हाई स्कूल

काव्य संकलन

रघुनाथ

काव्य संकलन

माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश द्वारा हाई स्कूल
कक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तक के
रूप में निर्धारित

राज्य सरकार के प्राधिकार से प्रकाशित

परामर्शदाता

श्रीमती महादेवी वर्मा, डॉ० हरवंशलाल शर्मा, श्री मोहनलाल कपूर

सम्पादक

प्रो० व्रजभूषण शर्मा, डॉ० सुधा गुप्ता, डॉ० राजकिशोर सिंह, श्री निरंजनकुमार सिंह, प्रो० श्याममोहन त्रिवेदी, श्री स्वामीस्वरूप पाठक, श्री गिरीशचन्द्र दुबे (साहित्यिक सहायक)

परिषद् सचिव

श्री रघुनन्दन सिंह

अतिरिक्त सचिव

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त

हिन्दी समिति

श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित, डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, श्री मोहनलाल कपूर, श्री बद्रीनारायणलाल, श्री कृष्णकुमार मिश्र

प्रथम संस्करण १९७५ पुनर्मुद्रण १९७६, १९७७

मूल्य : २·०५

राजनियुक्त प्रकाशक

साहित्य भंडार, इलाहाबाद

मुद्रक :

सुलेख मुद्रणालय, इलाहाबाद

भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये रियायती मूल्य के कागज पर मुद्रित

५९·४ × ८४·१ सेमी० भार १५ किलो० प्रिंटिंग पेपर हरा रंग

प्राक्कथन

हाई स्कूल एवं इण्टरमीडिएट दोनों ही स्तरों के लिए उत्कृष्ट पाठ्य पुस्तकों के प्रणयन एवं प्रकाशन के लिए उत्तर प्रदेश शासन ने पाठ्य पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की एक क्रमिक योजना तैयार की है। इस योजना के अन्तर्गत प्रथम चरण में जुलाई सन् १९७५ ई० के शिक्षा-सत्र से अनिवार्य अध्ययन हेतु हिन्दी की निम्नलिखित आठ पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं—

हाई स्कूल	इण्टर
१. गद्य संकलन	५. गद्य गरिमा
२. काव्य संकलन	५. काव्याञ्जलि
३. रंग भारती	७. कथा भारती
४. संस्कृत परिचायिका	८. संस्कृत दिग्दर्शिका

ये पुस्तकें हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वानों के परामर्श एवं प्रदेश के अनुभवी अध्यापकों, अध्यापक-प्रशिक्षकों, विश्वविद्यालय-प्राध्यापकों एवं विषय-विशेषज्ञों के सम्पादन के सम्मिलित प्रयास से तैयार की गयी हैं। राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्य पुस्तक निर्माण से सम्बद्ध राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली के कुछ अनुभवी अधिकारियों ने भी इन पुस्तकों के सम्पादन में अपना सहयोग हमें प्रदान किया है।

इन पुस्तकों के माध्यम से हमारा लक्ष्य राष्ट्र की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक उपलब्धियों से छात्रों को परिचित कराना तथा उनमें राष्ट्रीय आदर्शों एवं लक्ष्यों के प्रति जागरूकता पैदा करना है। समाजवाद एवं धर्म-निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता एवं भावनात्मक सामंजस्य, दायित्व-बोध एवं अनुशासन, विश्व-बन्धुत्व एवं मानवतावाद जैसे मूल्यों की प्रतिष्ठा हमारे राष्ट्र की घोषित नीति है। इन पुस्तकों की अध्ययन-सामग्री भाषा-बोध के साथ-साथ इन जीवन-मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

विगत दो दशकों में हमारे देश और समाज में तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बहुत कुछ घटित हुआ है और उसने जीवन और जगत् के विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित किया है। इस बीच सामाजिक मूल्य तेजी से बदले हैं, जिसके फलस्वरूप भाषा और साहित्य में भी तेजी से बदलाव हुआ है। अनेक अभिनव एवं विविध प्रयोगों से हिन्दी साहित्य बड़ी तीव्र गति से समृद्ध हुआ है। इन पाठ्य पुस्तकों में इस बदलाव और विविधता को परिलक्षित कराने का प्रयत्न किया गया है, जिससे कि अपने युग और उसके परिवेश के इस बदलाव की जानकारी भी छात्रों को हो सके। हमारा विश्वास है कि युगबोध से सम्बद्ध होने पर ही हमारे विद्यार्थी भाषा और साहित्य को जीवित शक्ति के रूप में ग्रहण कर सकेंगे।

संक्षेप में इन पुस्तकों के प्रणयन में हमारा प्रयास यह रहा है कि—

(१) छात्रों की ग्राहिका शक्ति की परिधि में आ सकने योग्य साहित्य के उत्कृष्ट अंश उनके अध्ययन का विषय बन सकें।

(२) पाठ्य सामग्री रोचक, वैविध्यपूर्ण, प्रेरक बोधगम्य एवं सुरुचिपूर्ण हो।

(३) पुस्तकें एक ओर कक्षा ८ से क्रमागत हों और दूसरी ओर विश्वविद्यालय-स्तर से भी जुड़ जाएँ।

(४) हाई स्कूल अथवा इण्टर के पश्चात् शिक्षा से विरत हो जाने वाले छात्रों को भी अपने आप में पूर्ण आवश्यक पाठ्य वस्तु मिल जाय।

(५) भूमिका, टिप्पणियों, प्रश्न-अभ्यासों के द्वारा पाठ्य सामग्री का ऐसा अपेक्षित विश्लेषण हो जाय कि छात्र सस्ती टीकाओं की ओर न झुकें।

हम यह नहीं कह सकते कि इस प्रयास में हमें कहाँ तक सफलता मिली है; तथापि प्रयत्न यही रहा है कि सीमित अवधि में उपलब्ध साधनों का अधिकाधिक उपयोग करते हुए पुस्तक को उपयोगी एवं स्तरानुकूल बनाया जा सके। सामग्री-चयन, भूमिका, प्रश्न-अभ्यास आदि में सतत परिमार्जन अपेक्षित है। एतदर्थ प्राप्त होने वाले सुझावों के लिए मैं अनुगृहीत होऊँगा।

जिन कृती लेखकों की रचनाएँ इन संकलनों में ली गयी हैं, उनका मैं हृदय से आभारी हूँ। परामर्शदाताओं और सम्पादकों का मैं विशेष रूप से ऋणी हूँ, जिन्होंने सीमित अवधि में अत्यन्त मनोयोग से पाण्डुलिपि तैयार की। परिषद् सचिव श्री रघुनन्दन सिंह तथा उनके सहकर्मियों, विशेष रूप से पाठ्य पुस्तक योजना से सम्बद्ध अतिरिक्त सचिव श्री गोविन्दवल्लभ पंत तथा उनके सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। श्री पंत और उनकी पाठ्य पुस्तक इकाई के अथक परिश्रम और कर्त्तव्यनिष्ठा के बिना यह गुरुतर कार्य इतने अल्प समय में इस सुचारुता से पूरा नहीं हो सकता था। हिन्दी समिति के सदस्यों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करना चाहूँगा, जिन्होंने इन पुस्तकों के प्रणयन में अपना योगदान किया है।

डॉ० श्यामनारायण मेहरोत्रा
शिक्षा निदेशक एवं सभापति
माध्यमिक शिक्षा परिषद्
उत्तर प्रदेश

विषय-सूची

यह संकलन

उत्तर प्रदेश शासन की राष्ट्रीयकृत पाठ्य पुस्तकें तैयार करने की योजना के अन्तर्गत यह काव्य-संकलन कक्षा ९ तथा १० के लिए प्रस्तुत है। यह दो वर्ष के लिए एकीकृत पाठ्य सामग्री है। सामग्री सामान्यतः काल-क्रमानुसार दी गयी है। परन्तु शिक्षण में कोई भी सुविधाजनक क्रम अपनाया जा सकता है।

पिछले संकलन सन् १९५६ ई० से चले आ रहे थे। इस बीच में समाज में पर्याप्त परिवर्तन हुए, साहित्य की अभिवृद्धि हुई और युग-बोध में भी अनेक बदलाव आये। अतः नये संकलन की आवश्यकता सहज ही समझी जा सकती है।

इस संकलन में प्राचीन, नवीन और नवीनतम सभी प्रकार की रचनाएँ संकलित हैं। नवीन कवियों को अधिक स्थान देने के उद्देश्य से ब्रज और अवधी के प्राचीन कवियों की लगभग एक तिहाई रचनाएँ ही दी गयी हैं। इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि जो छात्र हाई स्कूल के पश्चात पढ़ना छोड़ देते हैं उन्हें भी हिन्दी के सत-साहित्य की झाँकी मिल जाय और जो आगे इण्टर कक्षाओं में अध्ययन करें, उन्हें हिन्दी काव्य का और अधिक ज्ञान प्राप्त करने में कोई कठिनाई न हो। रचनाओं के चयन में क्रमायोजन, छात्रों की सुरुचि और शैक्षिक आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखा गया है। यह भी अभीप्सित रहा है कि हिन्दी काव्य साहित्य के क्रमिक विकाश की रूप-रेखा से विद्यार्थी अवगत हो जायँ। अतः भूमिका में हिन्दी काव्य का संक्षिप्त इतिहास दे दिया गया है और रचनाएँ भी प्रायः कालक्रम में दी गयी हैं।

काव्य-सौन्दर्य के मुख्य तत्त्वों पर भी एक संक्षिप्त टिप्पणी इस आशा से भूमिका में समाविष्ट कर दी गयी है कि छात्रों को काव्य-सौन्दर्य की अनुभूति और परख दोनों में सहायता मिले।

शिक्षण और परीक्षण दोनों की दृष्टि से इस संकलन में उतनी ही सामग्री देना उपयुक्त समझा गया है जिसका उपलब्ध समय में सुविधापूर्वक पठन-पाठन किया जा सके और साथ ही महत्त्वपूर्ण विधाओं तथा जीवन-मूल्यों का भी प्रतिनिधित्व हो

जाय । प्रत्येक पाठ के अन्त में प्रश्न और अभ्यास दे दिये गये हैं, जिससे छात्रों को अर्थबोध में सहायता मिले और महत्त्वपूर्ण स्थलों की ओर उनका ध्यान आकर्षित हो जाय । पुस्तक के अन्त में पाठ्य सामग्री पर टिप्पणियाँ भी दे दी गयी हैं। इनसे छात्रों को सहायता मिलेगी। अन्तःकथाएँ, रस, अलंकार और छंद भी परिशिष्ट के रूप में दे दिये गये हैं। जागरूक अभिभावक भी इनकी सहायता से अपने बच्चों को लाभान्वित करा सकते हैं। आशा है यह संकलन अपने उद्देश्य में सफल होगा।

———

भूमिका

कविता

कविता प्रायः पद्यात्मक और छन्द-बद्ध होती है। चिंतन की अपेक्षा उसमें भावनाओं की प्रधानता होती है। उसका उद्देश्य सौन्दर्य की अनुभूति द्वारा आनन्द की प्राप्ति करना होता है। आनुषंगिक रूप से कविता द्वारा भाषा की भी समृद्धि होती है, किन्तु मूलतः यह आनन्द का साधन है। तर्क और युक्तियों का आश्रय न लेकर कवि रसानुभूति का समवेत प्रभाव उत्पन्न करता है। अतः कविता में यथार्थ का यथारूप चित्रण नहीं मिलता वरन यथार्थ को कवि जिस रूप में देखता है अथवा जिस रूप में उससे प्रभावित होता है, उसी का वह चित्रण करता है। इसलिए कवि का सत्य सामान्य सत्य से भिन्न प्रतीत होता है। वह अतिशयोक्ति का सहारा भी इसी प्रभाव को दिखाने के लिए लेता है। कविता में अतिशयोक्ति दोष या मिथ्या न होकर अलंकार बन जाता है।

कविता के विषय

मूलतः मानव ही काव्य का विषय है। जब कवि पशु-पक्षी अथवा निसर्ग का वर्णन करता है, तब भी वह मानव-भावनाओं का ही चित्रण करता है। व्यक्ति और समाज के जीवन का कोई भी पक्ष काव्य का विषय बन सकता है। आज के कवि का ध्यान जीवन के सामान्य एवं उपेक्षित पक्ष की ओर भी गया है। उसके विषय महापुरुषों तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु वह छिपकली, केंचुआ आदि पर भी काव्य-रचना करने लगा है। परन्तु उन्नत विषय, भाव एवं विचार तथा आदर्श-जीवन और उसका संदेश कविता को स्थायी, महत्वपूर्ण और प्रभावकारी बनाने में अधिक समर्थ होते हैं।

कविता और संगीत

कविता छन्द-बद्ध रचना है। छन्द उसे संगीत प्रदान करता है। छन्द की लय यति-गति, वर्णों की आवृत्ति, तुकान्त पदावली इस संगीत के प्रमुख तत्त्व हैं। किन्तु संगीत और काव्य के क्षेत्र अलग-अलग हैं। संगीत का आनन्द मूलतः नाद का आनन्द है, जबकि कविता में मूल आनन्द अर्थ का है। कविता में नाद का सौन्दर्य अर्थ का ही अनुगामी होता है।

सादृश्य-विधान

जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, कविता भाव-प्रधान होती है। अपने

भावों को पाठक के हृदय तक पहुँचाने के लिए कवि वर्ण्य-विषयों के सदृश अन्य वस्तु-व्यापार प्रस्तुत करता है। जैसे कमल के सदृश नेत्र, चन्द्र-सा मुख, सिंह के समान वीर। इसी को सादृश्य विधान या अप्रस्तुत योजना कहते हैं।

शब्द-शक्ति

शब्द का अर्थ-वोध कराने वाली शक्ति ही शब्द-शक्ति है। शब्द और अर्थ का सम्वन्ध ही शब्द-शक्ति है। शब्द की तीन शक्तियाँ हैं—अभिधा, लक्षण और व्यंजना। अभिधा से मुख्यार्थ का बोध होता है तथा मुख्यार्थ में वाधा होने पर लक्षणा का आश्रय लेना पड़ता है। अन्त में व्यंजना से अर्थ मिलता है। कवि का अभिप्रेत अर्थ मुख्यार्थ तक ही सीमिति नहीं रहता। कविता का आनन्द लेने के लिए शब्दों के लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तक पहुँचना आवश्यक होता है। कवि फूलों को हँसता हुआ और मुख को मुरझाया हुआ कहना पसन्द करते हैं, जब कि सामान्यतः हँसना मनुष्य के लिए प्रयुक्त होता है और मुरझाना फूल के लिए। परन्तु मुख्यार्थ जाने विना हम लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ तक नहीं पहुँच सकते। कवि भी बड़ी सावधानी से शब्द-चयन करता है। कविता के शब्दों का आग्रह जिधर सहज रूप में बढ़े, पाठक अथवा श्रोता को उधर ही अभिमुख होना चाहिए।

कविता के सौन्दर्य-तत्व

कविता के निम्नांकित सौन्दर्य-तत्त्व हैं--

भाव-सौन्दर्य, विचार-सौन्दर्य, नाद-सौन्दर्य और अप्रस्तुत-योजना का सौन्दर्य। इन पर कुछ विस्तार से विचार कर लेना लाभप्रद होगा।

भाव-सौन्दर्य

प्रेम, करुणा, क्रोध, हर्ष, उत्साह आदि का विभिन्न परिस्थितियों में मर्मस्पर्शी चित्रण ही भाव-सौन्दर्य है। भाव-सौन्दर्य को ही साहित्य-शास्त्रियों ने रस कहा है। प्राचीन आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है।

शृङ्गार, वीर, हास्य, करुण, रौद्र, शान्त, भयानक, अद्‌भुत तथा बीभत्स—नौ रस कविता में माने जाते हैं। परवर्ती आचार्यों ने वात्सल्य और भक्ति को भी अलग रस माना है। सूर के बाल-वर्णन में वात्सल्य का, गोपी-प्रेम में शृङ्गार का, भूषण की शिवा बावनी में वीर रस का चित्रण है। भाव, विभाव और अनुभाव के योग से रस की सृष्टि होती है। रस का संक्षिप्त वर्णन परिशिष्ट—३ में दिया गया है।

विचार-सौन्दर्य

विचारों की उच्चता से काव्य में गरिमा आती है। गरिमापूर्ण कविताएँ प्रेरणा-

दायक भी सिद्ध होती हैं। उत्तम विचारों एवं नैतिक मूल्यों के कारण ही कबीर, रहीम, तुलसी और वृन्द के नीति-परक दोहे और गिरधर की कुंडलियाँ अमर हैं। इनसे जीवन की व्यावहारिक शिक्षा, अनुभव तथा प्रेरणा प्राप्त होती है।

आज की कविता में विचार-सौन्दर्य के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। गुप्तजी की कविता से राष्ट्रीयता और देश-प्रेम आदि का विचार-सौन्दर्य है। 'दिनकर' के काव्य में सत्य, अहिंसा एवं अन्य मानवीय मूल्य हैं। 'प्रसाद' की कविता में राष्ट्रीयता, संस्कृति और गौरवपूर्ण अतीत के रूप में विचारों का सौन्दर्य देखा जा सकता है। आधुनिक प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवि जन-साधारण का चित्रण, शोषितों एवं दीन-हीनों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति विरोध आदि प्रगतिवादी विचारों का ही वर्णन करते हैं।

नाद-सौन्दर्य

कविता छन्द-बद्ध रचना है। छन्द नाद-सौन्दर्य की सृष्टि करता है। छन्द के द्वारा कविता में लय, तुक, गति और प्रवाह का समावेश होता है। वर्ण और शब्द के सार्थक और समुचित विन्यास से कविता में नाद-सौन्दर्य और संगीतात्मकता आ जाती है, और कविता का सौन्दर्य बढ़ जाता है। यह सौन्दर्य श्रोता और पाठक के हृदय में आकर्षण पैदा कर देता है। वर्णों की बार-बार आवृत्ति (अनुप्रास), विभिन्न अर्थ वाले एक ही शब्द के बार-बार प्रयोग (यमक) से भी कविता में नाद-सौन्दर्य का समावेश होता है, जैसे—

खग-कुल कुल कुल सा बोल रहा।
किसलय का अंचल डोल रहा॥

यहाँ पक्षियों के कलरव में नाद-सौन्दर्य को देखा जा सकता है। कवि ने शब्दों के माध्यम से नाद-सौन्दर्य के साथ पक्षियों के समुदाय और हिलते हुए पत्तों का चित्र भी प्रस्तुत कर दिया है। 'घन घमंड नभ गरजत घोरा', अथवा 'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि' में मेघों का गर्जन-तर्जन तथा नूपुर की ध्वनि का सुमधुर स्वर क्रमशः है। इन दोनों ही स्थलों पर नाद-सौन्दर्य ने भाव को स्पष्ट भी किया है और नाद-बिम्ब को साकार कर भाव को गरिमा भी प्रदान की है।

बिहारी के निम्नलिखित दोहे में वायु रूपी कुंजर की चाल का वर्णन है। शब्दों की ध्वनि में हाथी के घण्टे की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। कवि की शब्द-योजना में चित्र साकार हो उठा है।

रनित भृंग घण्टावली झरित दान मधु नीर।
मंद-मंद आवतु चल्यो, कुंजर कुंज समीर॥

इसी प्रकार—घनन घनन बज उठी गरज तत्क्षण रणभेरी में मानों रणभेरी प्रत्यक्ष ही बज उठी है। आदि, मध्य अथवा अन्त में तुकान्त शब्दों के प्रयोग से भी नाद-सौन्दर्य उत्पन्न होता है, उदाहरणार्थ—

ढलमल ढलमल चंचल अंचल झलमल झलमल तारा।

इन पंक्तियों में नदी का कल-कल निनाद मुखरित हो उठा है। पदों की आवृत्ति से भी नाद-सौन्दर्य में वृद्धि होती है, जैसे—

माई री वा मुख की मुस्कान सँभारि न जैहै न जैहै न जैहै।

अथवा

हमकों लिख्यौ है कहा, हमकों लिख्यौ है कहा।
हमकों लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं॥

अप्रस्तुत योजना का सौन्दर्य

कवि विभिन्न दृश्यों, रूपों तथा तथ्यों को मर्मस्पर्शी और हृदय-ग्राही बनाने के लिए अप्रस्तुतों का सहारा लेता है। अप्रस्तुत-योजना में यह आवश्यक है कि उपमेय के लिए जिस उपमान की, प्रकृत के लिए जिस अप्रकृत की और प्रस्तुत के लिए जिस अप्रस्तुत की योजना की जाए उसमें सादृश्य अवश्य हो। सादृश्य के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उसमें जिस वस्तु, व्यापार और गुण के सदृश जो वस्तु, व्यापार और गुण लाया जाए वह उसके भाव के अनुकूल हो। इन अप्रस्तुतों के सहयोग से कवि भाव-सौन्दर्य की अनुभूति सुलभ बनाता है। कवि कभी रूप-साम्य, कभी धर्म-साम्य और कभी प्रभाव-साम्य के आधार पर दृश्य-विम्ब उभार कर सौन्दर्य व्यंजित करता है।

रूप-साम्य

करतल परस्पर शोक से, उनके स्वयं घर्षित हुए,
तब विस्फुरित होते हुए, भुजदण्ड यों दर्शित हुए।
दो पद्‌म शुण्डों में लिए, दो शुण्ड वाला गज कहीं,
मर्दन करे उनको परस्पर, तो मिले उपमा कहीं।

शुण्ड के समान ही भुजदण्ड भी प्रचण्ड हैं और करतल अरुण तथा कोमल हैं, यह प्रभाव आकार-साम्य से ही उत्पन्न हुआ है।

धर्म-साम्य

नवप्रभा परमोज्ज्वल लीक सी गतिमति कुटिला फणिनी समा।
दमकती दुरती घन अंक में विपुल केलि कला खनि दामिनी॥

फणिनी (सर्पिणी) और दामिनी दोनों का धर्म कुटिल गति है, दोनों ही

आतंक का प्रभाव उत्पन्न करती हैं।

भाव-साम्य

प्रिय पति, वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?
दुख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है ?
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ,
वह हृदय हमारा नेत्र तारा कहाँ है ?

यशोदा की विकलता को व्यक्त करने के लिए कवि ने कृष्ण को दुख जलनिधि डूबी का सहारा, प्राण प्यारा, नेत्र तारा, हृदय हमारा कहा है।

निम्नलिखित पंक्तियों में सादृश्य द्वारा श्रद्धा के सहज सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। मेघों के बीच जैसे बिजली तड़प कर चमक पैदा कर देती है, वैसे ही नीले वस्त्रों से घिरी श्रद्धा का सौन्दर्य देखने वाले के मन पर प्रभाव डालता है—

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ बन बीच गुलाबी रंग॥

इसी प्रकार—

लता भवन ते प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु युग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ॥

लता-भवन से प्रकट होते हुए दोनों भाइयों की उत्प्रेक्षा मेघ-पटल से निकलते हुए दो चन्द्रमाओं से की गयी है।

काव्यास्वादन

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि कविता का आस्वादन उसके अर्थ-ग्रहण में है। इसलिए पहले शब्दों का मुख्यार्थ समझना आवश्यक है। मुख्यार्थ समझने के लिए अन्वय करना भी आवश्यक है, क्योंकि कविता की वाक्य-संरचना में प्रायः शब्दों का वह क्रम नहीं रहता, जो गद्य में होता है। अतः अन्वय से शब्दों का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है और अर्थ खुल जाता है। इस प्रक्रिया में शब्द के वाच्यार्थ के साथ-साथ उसमें निहित लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ भी स्पष्ट हो जाते हैं। कवि कभी-कभी कविता में ऐसे शब्दों का भी साभिप्राय प्रयोग करता है, जिनके स्थान पर उनके पर्याय नहीं रखे जा सकते। कभी-कभी एक शब्द के एकाधिक अर्थ होते हैं और सभी उस प्रसंग में लागू होते हैं, कभी एक ही शब्द अलग-अलग अर्थों में एकाधिक बार प्रयुक्त होता है, कभी विरोधी शब्दों का प्रयोग भाव-वृद्धि के लिए किया जाता है और कभी

एक ही प्रसंग के कई शब्द एक साथ आते हैं। इस प्रकार के शब्दों की ओर ध्यान देना चाहिए और अपेक्षित अर्थ जानना चाहिए।

कविता के जिन तत्त्वों का उल्लेख किया गया है उनके सन्दर्भ में कविता के आस्वादन का प्रयास करना चाहिए।

काव्यास्वादन के लिए कविता को बार-बार मुखर रूप से पढ़ना आवश्यक है। काव्यास्वादन के लिए निम्नलिखित बातें सहायक हैं—

१—कविता के मूलभाव को समझकर अपने शब्दों में लिखना।

२—रस, अलंकार, गुण और छन्द आदि को समझकर कविता में इनकी उपयोगिता को हृदयंगम करना।

३—अच्छे भाव वाले पदों को कण्ठस्थ करना और उनका मुखर पाठ करना।

काव्य के भेद

काव्य के मुख्य दो भेद हैं—श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। श्रव्य काव्य वह काव्य है जो कानों से सुना जाता है। दृश्य काव्य वह है जो अभिनय के माध्यम से देखा-सुना जाता है, जैसे नाटक।

श्रव्य काव्य के दो भेद हैं—प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य और आख्यानक गीतियाँ आती हैं।

मुक्तक काव्य—के भी दो भेद हैं—पाठ्य मुक्तक तथा गेय मुक्तक।

महाकाव्य

प्राचीन आचार्यों के अनुसार महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं—

महाकाव्य में जीवन का व्यापक रूप में चित्रण होता है। इसकी कथा इतिहास-प्रसिद्ध होती है। इसका नायक उदात्त और महान चरित्र वाला होता है। इसमें वीर, श्रृंङ्गार और शान्त रस में से कोई एक रस प्रधान तथा शेष रस गौण रहते हैं। महाकाव्य सर्गबद्ध होता है तथा इसमें कम से कम आठ सर्ग होते हैं। महाकाव्य की कथा में धारावाहिकता तथा हृदय को भाव-विभोर करने वाले मार्मिक प्रसंगों का समावेश भी होना चाहिए।

आधुनिक युग में महाकाव्य के प्राचीन प्रतिमानों में परिवर्तन हुआ है। इतिहास के स्थान पर मानव जीवन की कोई भी घटना, कोई भी समस्या, इसका विषय हो सकती है। महान पुरुष के स्थान पर समाज का कोई भी व्यक्ति इसका नायक हो सकता है। परन्तु उस पात्र में क्षमता का होना अनिवार्य है। हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध महाकाव्य हैं—पदमावत, रामचरितमानस, साकेत, प्रियप्रवास, कामायनी, उर्वशी, लोकायतन।

खण्ड काव्य

खण्ड काव्य में जीवन के व्यापक चित्रण के स्थान पर उसके किसी एक पक्ष, अथवा रूप का चित्रण होता है। पर खण्ड काव्य महाकाव्य का संक्षिप्त रूप अथवा एक सर्ग नहीं है। खण्ड काव्य में अपनी पूर्णता होती है। सम्पूर्ण रचना में प्रायः एक ही छन्द प्रयुक्त होता है।

पंचवटी, जयद्रथ-वध, नहुष, सुदामा-चरित, पथिक, गंगावतरण, हल्दीघाटी हिन्दी के कुछ प्रसिद्ध खण्ड काव्य हैं।

आख्यानक गीतियाँ

महाकाव्य और खण्ड काव्य से भिन्न पद्यबद्ध कहानी का नाम आख्यानक गीति है। इसमें वीरता, साहस, पराक्रम, बलिदान, प्रेम और करुणा आदि के प्रेरक घटना-चित्रों में कथा कही जाती है। इसकी भाषा सरल, स्पष्ट और रोचक होती है। गीतात्मकता और नाटकीयता इसकी विशेषताएँ हैं। झाँसी की रानी, रंग में भंग, विकट भट आदि रचनाएँ आख्यानक गीतियों में आती हैं।

मुक्तक काव्य

मुक्तक काव्य महाकाव्य और खण्ड काव्य से भिन्न प्रकार का होता है। उसमें एक अनुभूति, एक भाव या कल्पना का चित्रण होता है। इसमें महाकाव्य या खण्ड काव्य जैसी धारावाहिता न होने पर भी इनका वर्ण्य विषय अपने में पूर्ण होता है। प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र होता है। जैसे कबीर, बिहारी, रहीम के दोहे तथा सूर और मीरा के पद।

पाठ्य मुक्तक

इसमें विषय की प्रधानता रहती है। किसी में किसी प्रसंग को लेकर भावानुभूति का चित्रण होता है और किसी में किसी विचार अथवा रीति का वर्णन किया जाता है। कबीर, तुलसी, रहीम के भक्ति एवं नीति के दोहे तथा बिहारी, मतिराम, देव आदि की रचनाएँ इसी कोटि में आती हैं।

गेय मुक्तक

इसे गीति या प्रगीति काव्य भी कहते हैं। यह अंग्रेजी के लिरिक का समानार्थी है। इसमें भावप्रवणता, आत्माभिव्यक्ति, सौन्दर्यमयी कल्पना, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता की प्रधानता होती है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी साहित्य के इतिहास को विद्वानों ने मुख्यतः चार भागों में बाँटा है। यह

विभाजन युग विशेष की प्रमुख साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया गया है जो इस प्रकार है—

१—आदि काल (वीरगाथा काल)	८०० विक्रमी सं० से १४०० वि० सं० तक (सन् ७४३ ई० से १३४३ ई० तक)
२—पूर्व मध्य काल (भक्ति काल)	१४०० वि० सं० से १७०० वि० सं० तक (सन् १३४३ ई० से १६४३ ई० तक)
३—उत्तर मध्य काल (रीति काल)	१७०० वि० सं० से १६०० वि० सं० तक (सन् १६४३ ई० से १८४३ ई० तक)
४—आधुनिक काल	१६०० वि० सं० से अब तक (सन् १८४३ ई० से आज तक)

आदि काल (सन् ७४३ ई० से १३४३ ई० तक)

हिन्दी के प्रथम उत्थान काल को वीरगाथा काल, चारण काल आदि नाम भी दिये गये हैं। उस समय देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। इन राज्यों के राजपूत राजा आपस में लड़ते रहते थे। स्वभाव से ये राजा वीर, साहसी और विलासी थे। छोटी-छोटी बातों पर मन-मुटाव, ईर्ष्या तथा एक दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति के कारण प्रायः इनमें लड़ाइयाँ होती रहती थीं। मुसलमानों के आक्रमण भी इसी समय आरम्भ हो गये थे। इस समय वीर पुरुषों के यशोगान तथा वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन ही कविता का मुख्य विषय रहा। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१—आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा।
२—सामूहिक राष्ट्रीयता की भावना का अभाव।
३—युद्धों के सुन्दर और सजीव वर्णन।
४—वीर रस के साथ शृंङ्गार का भी वर्णन।
५—ऐतिहासिक वृत्तों में कल्पना का प्राचुर्य।

इस काल की रचनाएँ दो रूपों में मिलती हैं—

१—प्रबंध काव्य के रूप में
२—वीर गीतों के रूप में

प्रमुख कवियों तथा उनकी रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

१—दलपति विजय	खुमाण रासो	प्रबंध काव्य
२—चन्द वरदाई	पृथ्वीराज रासो	"

३—शारंगधर	हमीर रासो	प्रबंध काव्य
४—नल्ल सिंह	विजयपाल रासो	,,
५—जगनिक	परमाल रासो (आल्हा खण्ड)	वीर गीत
६—नरपति नाल्ह	बीसलदेव रासो	,,
७—केदार भट्ट	जयचन्द्र प्रकाश	,,
८—मधुकर	जयमयंक जसचन्द्रिका	,,

इन वीर गीत काव्यों में सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोक-प्रिय काव्य आल्ह खंड है। जगनिक नामक भाट कवि द्वारा रचित इस काव्य में महोबे के दो प्रसिद्ध वीरों—आल्हा तथा ऊदल (उदय सिंह) के वीर चरित का विस्तृत वर्णन है। यह बहुत ही लोक-प्रिय है और इसके गीत आज भी वर्षा ऋतु में उत्तर भारत के गाँव-गाँव में ढोलक की थाप के साथ गाये जाते हैं।

इस काल में कुछ श्रृंङ्गार रस की तथा भक्ति की रचनाएँ भी हुईं। किन्तु प्रमुखता वीर रस के काव्यों की ही रही। विद्यापति, अब्दुलरहमान तथा कुशल लाभ इस युग के अन्य प्रसिद्ध रचनाकार हैं।

रासो ग्रंथों की भाषा

रासो ग्रंथों की भाषा डिंगल है। यह वीर काव्यों के लिए अत्यन्त उपयुक्त है।

भाव-व्यंजना के लिए इसमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी, पंजाबी, ब्रज आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग खुलकर किया गया है। इसमें हृदय को स्पर्श करने की अद्‌भुत क्षमता है। इन ग्रंथों में विविध छन्दों का प्रयोग मिलता है। दोहा, सोरठा, त्रोटक, तोमर, चौपाई, गाथा, आर्या, सट्टक, रोला, छप्पय, कुण्डलिया, आदि छन्दों का कलात्मक प्रयोग हुआ है। इनमें रसोत्कर्ष की अपूर्व शक्ति है।

भक्ति काल (सन् १३४३ ई० से १६४३ ई० तक)

आदि काल के समाप्त होते-होते देश में राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बदल गयीं। मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर परस्पर लड़ते रहने वाले छोटे-छोटे राजा भी अब न रहे। इसी परिवर्तित परिस्थिति में भक्ति भावना का उदय हुआ। चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस भक्ति-भावना ने हिन्दी काव्य को विशेष रूप से प्रभावित किया और भक्ति की कई शाखाओं का विकास हुआ। अध्ययन की सुविधा के लिए इस काल के काव्य को दो शाखाओं में विभाजित किया जाता है—निर्गुण शाखा तथा सगुण शाखा। प्रथम की ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी तथा द्वितीय की रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी दो-दो उपशाखाएँ हैं।

निर्गुण शाखा—इसमें ब्रह्म (ईश्वर) के निराकार स्वरूप की उपासना की विधि अपनायी गयी। इसकी ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीरदास हैं। अन्य प्रसिद्ध कवियों के संत रैदास (रविदास), नानक, दादू, मलूकदास, धर्मदास और सुन्दरदास हैं। इन भक्तों ने साधना के सहज मार्ग को अपनाया, जाति-पाँति, तीर्थ-व्रत आदि बाह्याडम्बरों का विरोध किया। इनकी रचनाओं में साहित्यिक सौन्दर्य चाहे उतना अधिक न हो किन्तु भाव की दृष्टि से वे अत्यन्त समृद्ध तथा प्रभावोत्पादक हैं। इनकी भाषा पंचमेल सधुक्कड़ी भाषा है।

निर्गुण शाखा की दूसरी उपशाखा प्रेमाश्रयी के नाम से प्रसिद्ध है। इसे पल्लवित करने का श्रेय सूफी मुसलमान कवियों को है। इन कवियों ने लोक-प्रचलित हिन्दू राजकुमारों तथा राजकुमारियों की प्रेम-गाथाओं को फारसी की मसनवी शैली में बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। इनकी कविताएँ दोहा और चौपाई छन्दों में हैं। प्रेम की पीर, विरह-वेदना की तीव्रता, कथा की रोचकता और कल्पना तथा इतिहास का समन्वय इन सूफी कवियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस शाखा के सर्व श्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं, जिनका पदमावत (आख्यान काव्य) हिन्दी साहित्य का एक रत्न है। इस परम्परा का यह सबसे अधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसकी कहानी में इतिहास तथा कल्पना का योग है। चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी या पद्मावती तथा राजा रत्नसेन की कहानी इसमें प्रस्तुत की गयी है। इसमें लौकिक आख्यान द्वारा पारलौकिक प्रेम की व्यंजना है। जायसी कृत **पदमावत** की भाषा अवधी है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में '**अवधी की खालिस, बेमेल मिठास के लिए पदमावत बराबर याद किया जायगा।**'

कुतवन कृत **'मृगावती'**, मंझन कृत **'मधुमालती'**, उस्मान कृत **'चित्रावली'** शेखनवी कृत **'ज्ञानदीप'**, कासिमशाह कृत **'हंस-जवाहिर'** तथा नूर मुहम्मद कृत **'इन्द्रावती'** अन्य प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य हैं।

सगुण भक्ति शाखा—निर्गुण उपासना के अन्तर्गत ईश्वर के निराकार रूप को माना गया था। अवतार-भावना अथवा ईश्वर के सुन्दर-मधुर रूप के लिए उसमें अवकाश न था। ग्यारहवीं शताब्दी में स्वामी रामानुजाचार्य भक्ति के क्षेत्र में अवतार-भावना को प्रतिष्ठित कर चुके थे। उन्हीं की शिष्य-परम्परा में पन्द्रहवीं शताब्दी में स्वामी रामानन्दजी हुए, जिन्होंने जनता की चित्तवृत्तियों को समझने का प्रयास किया। इन्होंने जनता के बीच राम-भक्ति का प्रचार किया। रामानन्दजी की शिष्य-परम्परा में गोस्वामी तुलसीदासजी हुए, जिन्होंने दशरथ-पुत्र, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का शक्ति-शील-सौन्दर्य समन्वित रूप रामचरितमानस महाकाव्य में प्रस्तुत किया। राम-भक्ति की यह पावन मंदाकिनी न जाने कितनों के मन का कल्मष बहा

ले गयी । तुलसीदासजी द्वारा स्थापित लोक-आदर्श और राम-राज की महान कल्पना भारतीय समाज को ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को एक बड़ी देन है।

यह महाकाव्य अवधी भाषा में लिखा गया है और इसमें जायसी द्वारा अपनायी गयी दोहा-चौपाई शैली का परिष्कृत साहित्यक रूप मिलता है । रामचरितमानस की कथा का मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण है। इस महाकाव्य में जीवन की सर्वांगीणता है । रचना-कौशल, प्रवन्ध-पटुता, भाव-प्रवणता, रस, रीति, अलंकार, छन्द आदि सभी दृष्टियों से यह उत्कृष्ट काव्य-कृति है। तुलसीदास की रचना का उद्देश्य 'लोक-मंगल की साधना है।' उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के लोक-संग्रही चरित्र को काव्य का विषय बनाकर भारतीय संस्कृति, समाज और साहित्य को शक्ति प्रदान की।

सगुणोपासना की दूसरी शाखा कृष्णाश्रयी शाखा कहलाती है। इसके अन्तर्गत श्रीकृष्ण की पूर्ण ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठा हुई। कृष्ण भक्ति के प्रवर्त्तन का श्रेय श्री वल्लभाचार्य को है। ये अपने आराध्य श्रीकृष्ण की जन्म-भूमि में रहे, और इन्होंने गोवर्धन पर्वत पर श्री नाथजी का एक बड़ा मन्दिर बनवाया। कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि सूरदास हैं, जिन्होंने कृष्ण-लीला के मधुर पद गाकर प्रेम और संगीत की ऐसी धारा बहायी जिसमें डुबकी लगाकर जनता का हृदय आनंदमग्न हो गया। सूरदास कृत 'सूर-सागर' हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि है। 'साहित्य लहरी' और 'सूर-सारावली' भी इन्हीं की रचनाएँ कही जाती हैं। सूर-सागर के अन्तर्गत सवा लाख पद रचने की बात कही गयी है पर लगभग दस हजार ही पद मिलते हैं। इसमें विनय, बाल-लीला, गोचारण, गोपी-प्रेम, भ्रमर-गीत आदि से संबंधित बड़े ही सूक्ष्म भाव-चित्र पाये जाते हैं। कृष्ण-भक्त कवियों में सूरदास के अतिरिक्त नन्ददास, परमानन्ददास, कृष्णदास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी तथा गोविन्द स्वामी हैं। आठ कवियों के इस समुदाय को अष्टछाप कहते हैं। अन्य अनेक कृष्ण भक्त कवियों में मीराबाई और रसखान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

भक्ति काल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

ईश्वर में सहज विश्वास, उसकी दीन-वत्सलता, नाम-स्मरण की महत्ता, जप, कीर्तन, भजन का अवलंबन, गुरु की महत्ता, अहंकार का त्याग, जाति-पाँति का विरोध, लोक-मंगल की भावना, संत-जीवन का आदर्श—सरलता, निस्पृहता, परोपकार तथा प्रेम-महिमा आदि भक्ति काल की सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं।

भक्ति काल की साहित्यिक देन

इस युग में कबीर, जायसी, सूर-तुलसी जैसे रस-सिद्ध कवियों और महात्माओं

की दिव्य वाणी उनके अन्तःकरणों से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी। भाव, भाषा एवं शिल्प सभी दृष्टियों से हिन्दी साहित्य का यह उत्कर्ष काल माना जाता है। संत कवियों ने अपना संदेश वड़ी स्पष्टता तथा निर्भीकता से जनता के समक्ष प्रस्तुत किया। ऐसा साहित्य किसी विशेष देश या काल का ही नहीं अपितु सार्वभौम एवं सर्वकालिक होता हैं। भक्ति काल के काव्य में भाव तथा कला-पक्ष का उत्कृष्ट रूप मिलता है। इसी कारण इस काल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है।

रीति काल (सन् १६४३ ई० से १८४३ ई० तक)

१६वीं-१७वीं शताब्दी तक इस देश में मुगल साम्राज्य पूर्णतः प्रतिष्ठित हो चुका था। वह वैभव के शिखर पर था। जन-जीवन भी सुख-शान्ति पूर्ण था। साहित्य पर इस परिस्थिति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। जो कृष्ण और राधा भक्ति के आलंबन थे, वही अव शृंगार के आलंवन वन गये। इसके अतिरिक्त एक और परिवर्तन आया। कवियों का ध्यान साहित्य-शास्त्र की ओर गया और उन्होंने रस, अलंकार, छंद, नायक-नायिका आदि के उदाहरण-रूप में कविताओं की रचना की। इस प्रकार की रचनाओं को रीति ग्रंथ या लक्षण ग्रंथ कहा जाता है। इस कला में ऐसी रचनाएँ अधिक हुईं और इसी कारण इसे रति काल कहा जाता है।

रीति ग्रंथ दो रूपों में मिलते हैं। एक वे जो अलंकार पर आधारित हैं और दूसरे वे जो रस पर। यहाँ संस्कृत की ही परम्परा का पालन दिखायी पड़ता है। केशव, भूषण और राजा यशवन्त सिंह अलंकारवादी आचार्य कवि थे। मतिराम, देव और पद्माकर रसवादी थे। रसवादी कवियों ने शृंगार रस के अन्तर्गत नायक-नायिकाओं की मनोदशाओं का विशद वर्णन किया है। कुछ ऐसे भी उत्कृष्ट कवि हुए हैं, जिनकी रचनाएँ रीतिवद्ध नहीं हैं। विहारी और घनानन्द का नाम इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। शृंगार के अतिरिक्त इस काल में कुछ भक्ति, नीति तथा वीर काव्य की भी रचना हुई। भूषण, गोरेलाल और सूदन वीर रस के कवि थे। वृन्द, गिरधर और दीनदयाल गिरि नीति परक रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। प्रकृति-चित्रण करने वाले कवियों में सेनापति का नाम प्रसिद्ध है। इस काल के प्रमुख कवि तथा उनकी रचनाएँ निम्नांकित हैं—

केशव : रामचन्द्रिका, कविप्रिया
भूषण : शिवराज भूषण, शिवाबावनी, छत्रसाल दशक;
मतिराम : रसराज, ललित-ललाम, सतसई;
विहारी : सतसई;

पद्माकर : पद्माभरण, जगद्विनोद, गंगा लहरी।

रीतिकाल के कवि प्रायः राजाश्रय में रहते थे। इसलिए इनकी रचनाओं का अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति भी मिलती है।

रीति काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : रीति ग्रन्थों का निर्माण; शृंगार रस की प्रमुखता; काव्य भाषा के रूप में ब्रजभाषा की प्रतिष्ठा और व्यापक प्रसार; सवैया और दोहा छंदों का प्रचुर प्रयोग; प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण; आश्रय-दाताओं की प्रशंसा; कला पक्ष की प्रधानता आदि इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

रीति काल की देन : इस युग की प्रमुख देन यह है कि ब्रजभाषा, काव्य भाषा के रूप में व्यापक रूप से प्रतिष्ठित हुई। अर्थ-गौरव, चमत्कार, लाक्षणिकता, सूक्ष्म भावाभिव्यंजन आदि की दृष्टि से वह पूर्ण समर्थ भाषा बन गयी। घनानन्द की लाक्षणिकता तो अद्वितीय है। कवित्त, सवैया और दोहा मुक्तक काव्य रचना के लिए सिद्ध छन्द बन गये।

आधुनिक काल (सन् १८४३ ई० से आज तक)

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अधिकतर विद्वानों ने सं० १९०० वि० से माना है।

आधुनिक काल, गद्य काल, नवीन विकास का काल, पुनर्जागरण काल आदि इस काल के कुछ प्रमुख नाम हैं।

हिन्दी काव्य के आधुनिक काल को भारतेन्दु, द्विवेदी, छायावादी धारा तथा नयी कविता के युगों में क्रमशः विभाजित किया गया है।

भारतेन्दु युग—भारतेन्दु आधुनिक साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। रीति काल में कवियों का नाता जन-जीवन से टूट चुका था। भारतेन्दु युग के कवियों ने इस सम्पर्क को फिर स्थापित किया और जन-भावना को वाणी दी। इस युग में खड़ी बोली गद्य की भाषा तो बन चकी थी, किन्तु काव्य के क्षेत्र में ब्रज भाषा की ही प्रधानता रही। काव्य-विषय की दृष्टि से भी नवीनता आयी। गद्य के क्षेत्र में जहाँ नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध और आलोचना आदि का विकास हुआ, वहाँ काव्य के क्षेत्र में स्वदेश-प्रेम, समाज-सुधार, प्रकृति-चित्रण आदि विषयों का समावेश हुआ।

द्विवेदी युग—द्विवेदीजी के अवतरित होते ही, खड़ी बोली का आन्दोलन बड़े जोरों से चला। द्विवेदीजी से प्रेरणा पाकर अनेक तरुण कवियों ने खड़ी बोली में काव्य-रचना आरम्भ की। श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मुकुटधर पांडेय, लोचनप्रसाद पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी, रामचरित्र

उपाध्याय आदि कवियों ने खड़ी बोली में काव्य-रचना की। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत तथा 'हरिऔध' ने प्रियप्रवास नामक महाकाव्य की रचना इसी युग में की। गुप्तजी ने अनेक खण्ड-काव्यों की भी रचना की। इस युग की कविता इतिवृत्तात्मक तथा वर्णन प्रधान थी। खड़ी बोली को समृद्ध और गतिशील बनाने का बहुत कुछ श्रेय आचार्य द्विवेदी को है और इसी कारण इस युग का नाम द्विवेदी युग पड़ा।

छायावाद युग—द्विवेदी-युग के बाद छायावाद का युग आया। ऐसा लगता है मानों विदेशी शासन के अत्याचारों, नैतिकता की कठोरता से जकड़े हुए नियमों तथा आर्थिक कष्टों से उत्पन्न, कवियों का विक्षोभ और असंतोष वर्तमान से दूर किसी काल्पनिक संसार में जाने के लिए मचल उठा। वास्तव में छायावादी काव्य द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया थी। प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी छायावाद के प्रमुख कवि हैं।

वैयक्तिक अनुभूति की प्रवलता (आत्म-परक रचनाएँ) सौन्दर्य-भावना, शृंगार और प्रेम, वेदना, करुणा तथा नैराशय की भावना, प्रकृति का मानवीकरण, रहस्य भावना इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। छायावादी काव्य में अनुभूति एवं भावुकता के साथ चिन्तन की भी प्रधानता है। जीवन की चिरंतन समस्याओं पर भी इस युग के कवियों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। मानवतावाद तथा देश-प्रेम की भावना भी इस काल के काव्य में मिलती है।

छायावादी युग प्रधानत: मुक्तक गीतों का युग है। ये मुक्तक गीत गेय तथा संगीतात्मक हैं। निराला और महादेवी के काव्य में गीति का सुन्दर विधान है। रामकुमार वर्मा के गीत भी लोकप्रिय हुए हैं। चित्रमयी कल्पना तथा लाक्षणिक प्रतीकात्मक शैली को अपनाकर छायावादी कवियों ने कविता को सजीव और सरस वना दिया। भावानुकूल छन्द चयन करने में भी इन्होंने अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। अलंकारों के प्रयोग में भी नवीनता है। मानवीकरण तथा विशेषण-विपर्यय जैसे नये अलंकारों का प्रयोग है। भाषा (खड़ी बोली) को सँवारने, उसमें ब्रजभाषा जैसा लोच और सरसता लाने, उसकी अभिव्यंजना-शक्ति बढ़ाने का सम्पूर्ण श्रेय इस युग को ही है।

प्रगतिवादी युग—द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता, आदर्श और नैतिकता के विरुद्ध विद्रोह छायावादी काव्य में हुआ था किन्तु छायावादी काव्य में सूक्ष्म और वायवी कल्पनाओं की इतनी अतिशयता हो गयी कि स्थूल जगत की कठोर वास्तविकता से उसका कोई सम्वन्ध ही न रह गया।

फलत: प्रगतिवादी कविता में छायावादी कविता की सूक्ष्मता और अतिकाल्पनिकता के प्रति विद्रोह हुआ। प्रगतिवादी कवि स्थूल जगत की वास्तविकता की ओर

लौटा। कार्ल मार्क्स के साम्यवाद को आधार बनाकर रोटी-कपड़ा-मकान की समस्या और मजदूरों-किसानों की दयनीय दशा को कविता का विषय बनाया गया। इन कवियों ने पूँजीवाद के विरुद्ध आवाज उठायी। सीधी-सादी अनलंकृत भाषा में अपनी बात कह देना इनकी विशेषता है। प्रगतिवादी कवियों के पंत, निराला, दिनकर, भगवती-चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल मुख्य हैं। इनमें से कुछ कवियों की कविताओं में सामाजिक क्रान्ति का स्वर अधिक प्रखर है। प्रगतिवादी कवियों ने छंद के बंधन को अनिवार्य नहीं माना।

प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं का विरोध, मानवतावादी प्रवृत्ति, शोषक वर्ग के प्रति घृणा और शोषितों के प्रति सहानुभूति, विद्रोह एवं क्रान्ति की भावना, समाज का यथार्थवादी चित्रण, नारी के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण आदि इस प्रगतिवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ है।

प्रयोगवादी धारा एवं नयी कविता

प्रयोगवाद का आरम्भ, 'अज्ञेय' द्वारा सम्पादित तथा सन् १९४३ ई० में प्रकाशित तारसप्तक संकलन से माना जाता है। तारसप्तक में सात कवियों की रचनाएँ हैं। इन्हें अज्ञेय ने 'राहों का अन्वेषी' कहा था। ये सात कवि थे—अज्ञेय, गजाननमाधव 'मुक्तिबोध', नेमिचन्द्र, भारतभूषण, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर तथा राम विलास शर्मा। सन् १९५१ ई० में दूसरा सप्तक प्रकाशित हुआ जिसके सात कवि थे—भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुर, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती। सन् १९५९ ई० में तीसरा सप्तक भी प्रकाशित हुआ। प्रयोगवाद के समर्थन में कुछ पत्र-पत्रिकाएँ भी निकलीं। कुछ प्रयोग-वादी कवियों के कविता-संग्रह भी प्रकाशित हुए। अज्ञेय रचित हरी घास पर क्षण भर, सुनहरे शैवाल, इन्द्र धनु रौंदे हुए ये, आंगन के पार द्वार; भवानीप्रसाद मिश्र कृत गीत फरोश, खुशबू के शिला लेख; गिरिजा कुमार माथुर कृत धूप के धान, शिला पंख चमकीले; धर्मवीर भारती कृत ठंडा लोहा, कनु प्रिया आदि उल्लेखनीय हैं।

घोर वैयक्तिकता, अति यथार्थवादी दृष्टिकोण, कुण्ठा और निराशा के स्वर, गहन बौद्धिकता, भदेस (अनगढ़, विरूप) का चित्रण, विद्रोह का स्वर, व्यंग्य तथा कटूक्ति प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

भाषा और शिल्प के क्षेत्र में इन कवियों ने नये प्रयोग किए हैं। साहित्यिक हिन्दी के साथ अंग्रेजी, उर्दू, बंगला तथा अन्य आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी इन्होंने किया है। यह कविता मुक्तक शैली में रची गयी है। नवीन बिम्ब योजना

तथा नवीन उपमाओं का प्रयोग (लालटेन से नयन-दीप, हड्डी के रंग वाला वादल, मजदूरिनी-सी रात आदि) भी इसकी विशेषता हैं। प्रयोगवादी कविता ने हिन्दी काव्य को एक नयी सशक्त भाषा दी है तथा उसकी अभिव्यंजना शक्ति में वृद्धि की है।

प्रयोगवादी धारा विकसित होकर नयी कविता के रूप में आयी। सन् १९६० ई० के वाद नयी कविता का युग आया। इन वर्षों में ऐसी वाद-मुक्त कविता रची गयी है जो किसी विशेष प्रवृत्ति, 'स्कूल' या 'वाद' से वँध कर नहीं चली।

अध्ययन और अध्यापन

इस संकलन का उद्देश्य केवल प्रस्तुत कविताओं के अध्ययन तक ही सीमित नहीं है बल्कि उनके माध्यम से हिन्दी काव्य साहित्य की सामान्य जानकारी देना और काव्य के पठन-पाठन के प्रति रुचि उत्पन्न करना भी है। शिक्षण कार्य करते समय इस मूल उद्देश्य को ध्यान में रखना है।

जिस प्रकार मातृ-भाषा के गद्य साहित्य का सम्बन्ध मानसिक विकास से है, उसी प्रकार उसके काव्य साहित्य का सम्बन्ध छात्रों के भावात्मक विकास से है। काव्य मनुष्य को सुख-दुख से ऊपर उठाकर आनन्द की स्थिति तक पहुँचाता है। उसके अध्ययन से हृदय का कलुष धुल जाता है, कुत्सित-भाव नष्ट हो जाते हैं और कल्याण-कारी भाव पुष्ट होते हैं।

कविता के पठन-पाठन से परोक्ष रूप में छात्रों का भाषा-ज्ञान भी बढ़ता है। परन्तु कविता-शिक्षण का मुख्य लक्ष्य भाषा सिखाना नहीं है। उसका लक्ष्य आनन्द की अनुभूति कराना है। शिक्षक और छात्र मिलकर इसी आनन्द की खोज करें। शब्दार्थ, व्याख्या, घटना-व्यापार, वैज्ञानिक सत्य, पशु-पक्षी-स्वभाव तथा कथा-कहानी से संबंधित ज्ञान से आगे बढ़ने पर ही वास्तविक कविता-शिक्षण का कार्य आरम्भ होता है। शिक्षण की सुविधा की दृष्टि से काव्य-सौन्दर्य को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है—अभिव्यक्ति का सौन्दर्य, भाव-सौन्दर्य और विचार-सौन्दर्य। अभिव्यक्ति के अन्तर्गत नाद और चित्रात्मकता का सौन्दर्य है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, प्रतीक आदि के सहारे वस्तु-व्यापारों के चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। लज्जा, शोक, उत्साह, वात्सल्य आदि के वर्णन, भाव-सौन्दर्य के अन्तर्गत आते हैं। जीवन-दर्शन तथा नीति संबंधी रचनाओं में विचारों की प्रमुखता रहती है। सूर के बाल-लीला के पद तथा नरोत्तम का सुदामाचरित भाव-प्रधान रचनाओं के उदाहरण हैं। कबीर और रहीम के दोहों में तथा बच्चन के 'पथ की पहचान' शीर्षक गीत में विचारों की प्रधानता है शिक्षण-कार्य में इन्हीं आनन्द तत्त्वों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहिए।

रसास्वादन की शिक्षा देना कठिन कार्य है। यदि शिक्षक का मन किसी कविता में नहीं रम सका, तो वह छात्रों में उस कविता के प्रति राग उत्पन्न करने में कभी सफल नहीं होगा। परन्तु जिस शिक्षक को काव्य से प्रेम है उसके लिए भी काव्य-शिक्षण के कोई सिद्ध सूत्र निर्धारित करना कठिन होगा। कुछ सामान्य सिद्धान्तों की ओर यहाँ संकेत किया जा सकता है—

(१) रसास्वादन की क्षमता प्रत्येक बालक में अलग-अलग मात्रा में होती है।

अत: प्रत्येक छात्र से एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया की आशा न करनी चाहिए।

(२) उचित शिक्षण और अभ्यास से यह क्षमता बढ़ायी जा सकती है।

(३) कविता का सुपाठ कठिन कार्य है। अत: छात्रों द्वारा कविता-पाठ कराते समय विवेक से काम लेना चाहिए।

(४) कविता का प्रथम परिचय प्रभावोत्पादक हो। शिक्षक के सुपाठ से भी मार्ग बहुत कुछ प्रशस्त हो जाता है। सुपाठ में व्यंजनों तथा स्वर वर्णों का उच्चारण पूर्ण स्पष्ट तथा शुद्ध हो। व्रज और अवधी की रचना में भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप ही उच्चारण हो। संगीत-तत्त्व को उभर आना चाहिए। शिक्षक की वाणी तथा भावभंगी रसानुकूल हो—जैसे वीर रस में उत्साह, राष्ट्र-प्रेम में ओज और शान्त रस की रचना के पाठ में गाम्भीर्य अपेक्षित है। वाणी से छन्द की गति और अर्थ की अभिव्यक्ति स्पष्ट होनी चाहिए।

(५) कविता का सौन्दर्य उसके अर्थ में निहित रहता है और शब्द उस अर्थ को व्यक्त करते हैं। शब्दों के अर्थ, प्रसंगानुकूल अर्थ, वाक्य के शब्द-क्रम आदि से परिचित होना रसास्वादन का प्रथम सोपान है। अत: शिक्षक को कविता की पृष्ठभूमि तथा शब्दार्थ आदि से अपने छात्रों को परिचित कराना चाहिए। आवश्यकतानुसार पदान्वय भी करा देना चाहिए, क्योंकि बाहर से अर्थ का आरोपण करना उचित नहीं होगा। तदुपरान्त व्याख्या, प्रश्न, तुलना आदि से विचारों, भावों और कल्पनाओं को व्यवस्थित करना वांछनीय हैं। जहाँ कहीं रिक्तियाँ होंगी उनकी पूर्ति भी शिक्षक को ही करनी होगी। कविता के शब्दों से लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तक पहुँचना है। छात्र को इसकी प्रतीति निरंतर कराते रहना चाहिए।

(६) कक्षा का वातावरण आनन्दमय हो। बातचीत के ढंग में अकृत्रिमता और साहचर्य का भाव हो जिससे छात्र सहभागिता का अनुभव करें।

(७) सुपाठ, व्याख्या, प्रश्नोत्तर आदि छात्रों से रसानुभूति की अभिव्यक्ति करायी जाय। कंठाग्र करने और सुपाठ करने से कविता के पठन-पाठन के लिए अनुकूल संस्कार बनते हैं।

पाठ-संचालन के निम्न सोपान प्रस्तावित किये जा सकते हैं—

(१) शिक्षक द्वारा सुपाठ।

(२) केन्द्रीय भाव-ग्रहण।

(३) शब्दार्थ एवं सूक्ष्म भाव तथा विचार-विश्लेषण। यह कार्य जितना सहयुक्त एवं सम्वद्ध रूप से चल सके उतना ही उपयोगी होगा।
(४) व्याख्या एवं आस्वादन।
(५) बालकों द्वारा सुपाठ।
(६) कण्ठाग्र करना एवं अन्य साधनों द्वारा अभिव्यक्ति।

मुक्तक रचनाओं में प्रायः एक ही अन्विति रहती है। अतः सम्पूर्ण कविता को लेकर ही शिक्षण कार्य करना चाहिए। प्रसाद, पंत, महादेवी तथा दिनकर आदि आधुनिक कवियों की संकलित रचनाएँ इसी कोटि की हैं। दोहे, पद तथा मुक्तक छन्द भी इसी कोटि में आते हैं। लम्बी कविताओं को अन्वितियों में बाँटने की आवश्यकता भी होगी।

छात्रों के रसास्वादन में सहायता प्रदान करने और उसकी अभिव्यक्ति के लिए प्रत्येक पाठ के अन्त में प्रश्न और अभ्यास दिये गये हैं। शिक्षक को इनसे सहायता लेनी चाहिए और आवश्यकतानुसार प्रश्न तथा अभ्यास बना लेने चाहिए। ललित अंशों का चयन और लालित्य के कारण बताना, भावार्थ लिखना, अप्रस्तुतों पर विचार करना, विशेषण-विपर्यय, लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक प्रयोगों की विशेषता बताना अभिव्यक्ति के विविध रूप हैं। समभावात्मक पंक्तियाँ ढूंढ़ना, कण्ठस्थ करना, अन्त्याक्षरी करना एवं कवियों की वेश-भूषा में सुपाठ करना भी सहायक होता है।

कवि की शैली की ओर भी छात्रों का ध्यान आकर्षित किया जाय। कवि के सामान्य परिचय में कवि की भाषा-शैली तथा अन्य विशेषताएँ भी उदाहरण देकर बतायी जाएँ और छात्रों को उसकी रचनाओं का परिचय देकर उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।

रस, अलंकार एवं छन्दों की सामान्य जानकारी होना भी हाई स्कूल स्तर के लिए निर्धारित है। इसके लिए परिभाषा और उदाहरण कण्ठस्थ कर लेना मात्र पर्याप्त नहीं है। उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट करा देना चाहिए कि काव्य-सौन्दर्य के बोध में इनका क्या योगदान है। शिक्षण-क्रम में भी इन सौन्दर्य तत्वों की ओर निरन्तर ध्यान आकर्षित करते रहना चाहिए।

हिन्दी काव्य साहित्य के इतिहास का सामान्य परिचय भी छात्रों को देना है। इसके अन्तर्गत विभिन्न काव्यों की सामान्य प्रवृत्तियों का ज्ञान, प्रमुख कवियों और उनकी प्रमुख रचनाओं से परिचय कराना अपेक्षित है। प्रमुख काव्य रूपों और विधाओं के विकास का सामान्य ज्ञान भी अपेक्षित होगा। इस परिप्रेक्ष्य में पाठ्य

पुस्तक के कवियों के योगदान और उनके स्थान का भी संक्षिप्त विवेचन हो जाना चाहिए और उनके जीवन तथा उनकी रचनाओं का कुछ विस्तार के साथ अध्ययन आवश्यक है।

शिक्षण से संबंधित सामान्य बातों का ही यहाँ पर संकेत किया गया है। स्थानीय परिस्थितियों और कार्य की सीमाओं को देखते हुए शिक्षकों को अपने विवेक का सहारा सदैव लेना पड़ेगा।

कबीरदास

कबीरदास निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानमार्गी शाखा के संत कवि थे। कहा जाता है कि इनका जन्म काशी में सन् १३९८ ई० के लगभग हुआ था। नीमा और नीरू नाम के जुलाहा दम्पति ने इनका पालन-पोषण किया। इनके जीवन का अधिक समय काशी में ही बीता। इनकी मृत्यु सन् १४९५ ई० के लगभग मगहर में हुई। इस अंध-विश्वास को दूर करने के लिए कि काशी में मृत्यु होने से स्वर्ग मिलता है और मगहर में मरने से नरक, ये अन्तिम समय काशी छोड़कर मगहर चले गये और वहीं इन्होंने शरीर छोड़ा। इससे इनकी सच्चाई, परमात्म-भक्ति, साधना और दृढ़ आत्म-विश्वास का परिचय मिलता है।

कबीर मूलतः संत थे पर ये अपने पारिवारिक जीवन के कर्त्तव्यों के प्रति कभी उदासीन नहीं रहे। बड़े होने पर इन्होंने जुलाहे का ही धंधा अपनाया और आजीवन इस धंधे को निष्ठा के साथ करते रहे। अपने व्यवसाय से सम्बन्धित चरखा, ताना, बाना, भरनी तथा पूनी आदि का इन्होंने अपने काव्य में प्रतीकों के रूप में प्रयोग किया।

कबीर ने रामानन्द को अपना गुरु माना। यह भी कहा जाता है कि कबीर ने सूफी संत शेख तकी से दीक्षा ली थी, किन्तु इन्होंने अपनी रचनाओं में जिस श्रद्धा और सम्मान के साथ रामानन्द का उल्लेख किया है, उससे यही सिद्ध होता है कि रामानन्द ही इनके गुरु थे।

कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे। मसि कागद छूयौ नहीं कथन इस ओर संकेत करता है। पर इनमें अद्भुत काव्य-प्रतिभा थी। इनके शिष्यों ने इनकी कविताएँ लिख लीं और उनका संग्रह किया। कबीर के शिष्य धर्मदास ने इनकी रचनाओं का 'बीजक' नाम से संग्रह किया।

कबीर की संपूर्ण रचनाओं का संकलन बाबू श्यामसुन्दर दास ने 'कबीर ग्रंथावली' नाम से किया है जो नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित है।

कबीर का धर्म मानव धर्म था। मन्दिर, तीर्थाटन, माला, नमाज, पूजा-पाठ आदि धर्म के बाहरी आचार-व्यवहार तथा कर्मकाण्डों की इन्होंने कठोर शब्दों में निंदा की और सत्य, प्रेम, सात्त्विकता, पवित्रता, सत्संग, इंद्रिय-निग्रह, सदाचार, गुरु-महिमा, ईश्वर-भक्ति आदि पर विशेष बल दिया। पुस्तकों से ज्ञान-प्राप्ति की अपेक्षा अनुभव पर आधारित ज्ञान को ये श्रेष्ठ मानते थे। ईश्वर की सर्वव्यापकता और राम-रहीम की एकता के महत्त्व को बताकर इन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के भेद-भाव को

मिटाने का प्रयास किया। ये मनुष्य-मात्र को एक समान मानते थे।

कवीर निराकार ईश्वर के उपासक थे। इनके ईश-प्रेम में दाम्पत्य भाव भी देखने को मिलता है, जो सूफी संतों का प्रभाव प्रतीत होता है। कवीर नाथ-पंथियों के भी संपर्क में आये। अतः इनकी रचनाओं में विभिन्न विचारधाराओं का प्रभाव दिखायी पड़ता है। वस्तुतः कवीर के धार्मिक विचार वहुत ही उदार थे। इन्होंने विभिन्न धर्मों की कुरीतियों एवं संकीर्णताओं का विरोध किया और उनके श्रेयस्कर तत्त्वों को ही ग्रहण किया।

कवीर की रचनाओं में काव्य के तीन रूप मिलते हैं—साखी, रमैनी और सवद। साखी दोहों में, रमैनी चौपाइयों में और सवद पदों में हैं। साखी और रमैनी मुक्तक तथा सवद गीत-काव्य के अंतर्गत आते हैं। इनकी वाणी इनके हृदय से स्वाभाविक रूप में प्रवाहित हुई है और उसमें इनकी अनुभूति की तीव्रता पायी जाती है।

जन-भाषा के द्वारा भक्ति-निरूपण के कार्य को आरम्भ करने का श्रेय कवीर को ही है। इनकी भाषा में भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, अरवी और फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसी कारण आचार्य शुक्ल ने इनकी भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहा है। ये अपने सूक्ष्म मनोभावों और गहन विचारों को भी वड़ी सरलता से इस भाषा के द्वारा व्यक्त कर लेते थे।

साखी

सतगुर हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग॥ १॥

राम नाम के पटतरे, देबे कौं कछु नाहिं।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माँहि॥ २॥

ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि वीसरि जाइ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आइ॥ ३॥

माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि इवैं पड़ंत।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत॥ ४॥

गुर गोविन्द तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार॥ ५॥

भगति भजन हरि नावँ है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा क्रमनाँ, कबीर सुमिरण सार॥ ६॥

कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिसि लागी लाइ।
हरि सुमिरण हाथूँ घड़ा, बेगे लेहु बुझाइ॥ ७॥

अंषड़ियाँ झाईं पड़ी, पंथ निहारि-निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि-पुकारि॥ ८॥

सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥ ९॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।
सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि ॥ १० ॥

कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पर्यूं भ्वैं लोटणाँ, ऊपरि जामैं घास ॥ ११ ॥

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के ब्यौहार कौं, झूठै रंग न भूलि ॥ १२ ॥

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह।
राम नाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख षेह ॥ १३ ॥

यह तन काचा कुंभ है, लियाँ फिरै था साथि।
ढबका लागा फूटि गया, कछु न आया हाथि ॥ १४ ॥

कबीर कहा गरवियौ, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग ॥ १५ ॥

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ ॥ १६ ॥

हिन्दू मूये रॉम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ ॥ १७ ॥

जहिं घरि साधु न पूजिये, हरि की सेवा नाँहि।
ते घर मड़घट सारखे, भूत बसै तिन माँहि ॥ १८ ॥

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै वन माँहि।
ऐसैं घटि-घटि राम है, दुनियाँ देखै नाँहि ॥ १९ ॥

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।
सोवन कलस सुरै भर्या, साधू निंदा सोइ ॥ २० ॥

मैमंता मन मारि रे, नान्हाँ करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीसि ॥ २१ ॥

कबीर संगति साधु की, बेगि करीजै जाइ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥ २२ ॥

सबद

हरि जननी मैं बालिक तेरा,
काहे न अवगुण बकसहु मेरा ॥
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते ॥
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥
कहै कबीर एक बुधि विचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥ १ ॥
का माँगूं कछु थिर न रहाई,
देखत नैन चल्या जग जाई ॥

इक लख पूत सवा लख नाती, ता रावण घरि दिया न बाती ॥
लंका-सा कोट समुद्र-सी खाई, ता रावनि की खबर न पायी ॥
आवत संगि न जात संगाती, कहा भयौ दरि बाँधे हाथी ॥
कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसें चले जुवारी ॥ २ ॥

डग मग छाड़ि दे मन बौरा।
अब तो जरें बरें बनि आवैं, लीन्हों हाथ सिंधौरा ॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ ॥
सूरौ कहा मरन थैं डरपैं, सती न संचै भांड़ौ ॥
लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गले मैं पासी।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै ह्वैहै जग मैं हासी ॥
यह संसार सकल है मैला, राम कहैं ते सूचा।
कहै कबीर नाव नहिं छाड़ौ, गिरत परत चढ़ि ऊँचा ॥ ३ ॥

['कबीर ग्रन्थावली' से]

प्रश्न

१—सतगुरु की सरस बातों का कबीर पर क्या प्रभाव पड़ा ?
२—कबीर मनुष्य को गर्व न करने का उपदेश क्यों देते हैं ?
३—कबीर ने संसार को सेमल के फूल के समान क्यों कहा है ?
४—शरीर की क्षणभंगुरता को व्यक्त करने के लिए कबीर ने उसकी उपमा कच्चे से क्यों दी है ?
५—"ईश्वर सभी मनुष्य के अन्तर्जगत् में विद्यमान है पर मनुष्य उसके अस्तित्व अनुभव नहीं करते।" इस भाव को व्यक्त करने के लिए कबीर ने कौन-सा दृ चुना है ?
६—कबीरदास ईश्वर से कुछ माँगना क्यों नहीं चाहते ?
७—कबीर ने भगवान की समता माता से क्यों की है ?
८—कबीर ने भक्त की तुलना सती साध्वी स्त्री से क्यों की है ?
९—मोक्ष प्राप्ति के लिए कबीरदास ने मुख्यतः किन साधनों को अपनाने का दिया है ?

अभ्यास

१—निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए—

(क) माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवैं पड़ंत।
(ख) आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार।
(ग) अंषड़ियाँ झाँईं पड़ीं, पंथ निहारि-निहारि।
(घ) काल्हि पर्‌यूँ भ्वैं लोटणाँ, ऊपरि जामैं घास।
(च) कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसे चलै जुवारी।
(छ) अब तो जरैं बरैं बनि आवैं लीन्हों हाथ सिंधौरा।

२—ऐसी दो साखियाँ लिखिए जिनमें कबीर ने ईश्वर को स्मरण करने का दिया है।

३—कबीर के मत के अनुसार निम्नांकित में से जो कथन सत्य हो, उनकी पुष्टि कबीर की रचना से पंक्तियाँ छाँटकर लिखिए।

(क) मनुष्य को अपने अहं की सदा रक्षा करनी चाहिए।
(ख) ईश्वर की कृपा से ही हमें सद्गुरु प्राप्त होता है।
(ग) अपनी सम्पत्ति देखकर मनुष्य को कभी घमंड नहीं करना चाहिए।
(घ) सत्कर्मों के अभाव में ऊँचे कुल में जन्म लेना व्यर्थ है।
(ङ) हरि सेवा के लिए साधु की सेवा आवश्यक नहीं है।

४—कबीर की रचना में से दो पंक्तियाँ ऐसी खोज कर लिखिए जिनमें उन्होंने—
(क) अहंकार को नष्ट करने का उपदेश दिया हो।
(ख) मन को अपने वश में रखने का उपदेश दिया हो।

५—कुछ दोहों का सारांश तथा उनके प्रथम चरण नीचे लिखे हुए हैं; जो क्रम में नहीं हैं। प्रत्येक चरण के सामने दोहे का सारांश क्रम से लिखिए।

(१) भगवान का स्मरण ही जीवन में काम आता है। (२) ज्ञान के लिए अहंकार का नाश आवश्यक है। (३) संसार नाशवान है। (४) मीठी वाणी बोलनी चाहिए। (५) सत्संग से मन पवित्र होता है।

(क) भगति भजन हरिनाँव है, (ख) जब मैं था तब हरि नहीं,
(ग) ऐसी बानी बोलिए, (घ) कबीर कहा गरबियौ,
(ङ) कबीर संगति साध की।

६—माया दीपक नर पतंग में माया पर दीपक का आरोप है और यह रूपक अलंकार है। माया प्रस्तुत है और दीपक अप्रस्तुत है। कबीर की साखियों में से इसी प्रकार रूपक अलंकार के प्रस्तुत और अप्रस्तुत छाँट कर निम्न प्रकार से लिखिए—

प्रस्तुत	अप्रस्तुत
माया	दीपक

७—कबीर के प्रमुख विचार अपने शब्दों में लिखिए।

सूरदास

सूरदास सगुण मार्गी कृष्ण भक्तिशाखा के प्रमुख कवि हैं। कहा जाता है कि इनका जन्म सन् १४७८ में आगरे से मथुरा जाने वाली सड़क पर स्थित रुनकता गाँव में हुआ था। कुछ विद्वान इनका जन्म दिल्ली के निकट सीही गाँव में मानते हैं। ये बचपन से ही विरक्त हो गये थे और गऊघाट में रहकर विनय के पद गाया करते थे। एक बार वल्लभाचार्य गऊघाट पर रुके। सूरदास ने उन्हें स्वरचित एक पद गाकर सुनाया। वल्लभाचार्य ने इनको कृष्ण की लीला का गान करने का सुझाव दिया। ये वल्लभाचार्य के शिष्य बन गये और कृष्ण की लीला का गान करने लगे। वल्लभाचार्य ने इनको गोवर्धन पर बने श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन करने के लिए रख दिया। वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने अष्टछाप के नाम से आठ कृष्ण-भक्त कवियों का संगठन किया। सूरदास अष्टछाप के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनकी मृत्यु पारसौली ग्राम में सन् १५८३ के लगभग हुई।

सूरदास के पदों का संकलन सूरसागर हैं। सूर सारावली तथा साहित्य लहरी इनकी अन्य रचनाएँ हैं। यह प्रसिद्ध है कि सूरसागर में सवा लाख पद हैं। पर अभी तक केवल दस हजार पद ही प्राप्त हुए हैं।

सूरदास नें कृष्ण की वाल-लीलाओं का बड़ा ही विशद तथा मनोरम वर्णन किया है।वालजीवन का कोई पक्ष ऐसा नहीं, जिस पर इस कवि की दृष्टि न पड़ी हो। इसीलिए इनका वाल-वर्णन विश्व साहित्य की अमर निधि वन गया है। गोपियों के प्रेम और विरह का वर्णन भी वहुत आकर्षक है। संयोग और वियोग दोनों का मर्मस्पर्शी चित्रण सूरदास ने किया है। सूरदास का एक प्रसंग भ्रमरगीत कहलाता है। इस प्रसंग में गोपियों के प्रेमावेश ने ज्ञानी उद्धव को भी प्रेमी एवं भक्त वना दिया। सूर के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है इनकी तन्मयता। ये जिस प्रसंग का वर्णन करते हैं उनमें आत्म-विभोर कर देते हैं। इनके विरह-वर्णन में गोपियों के साथ ब्रज की प्रकृति भी विषाद-मग्न दिखायी देती है।

सूर की भक्ति मुख्यतः सखा भाव की है। परन्तु उसमें विनय, दाम्पत्य और माधुर्य भाव का भी मिश्रण है।

सूरदास ने ब्रज के लीला पुरुषोत्तम कृष्ण की लीलाओं का ही विशद वर्णन किया है। महाभारत के राजनीतिज्ञ योगिराज कृष्ण के वर्णन में इनकी मनोवृत्ति अधिक नहीं रम सकी।

सूरदास का सम्पूर्ण काव्य संगीत की राग-रागिनियों में बँधा हुआ पद-शैली का गीतकाव्य है। उसमें भाव-साम्य पर आधारित उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों की छटा देखने को मिलती है। इनकी कविता ब्रज-भाषा में है। माधुर्य की प्रधानता के कारण इनकी भाषा बड़ी प्रभावोत्पादक हो गयी है। व्यंग्य, वक्रता और वाग्विदग्धता सूर की भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। पद-शैली में कृष्ण की लीलाओं के गान की यह परम्परा हिन्दी काव्य में आधुनिक काल तक चलती रही।

पद

रूपक अलंकार।

चरन-कमल बंदौं हरि राइ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कुछ दरसाइ।
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तिहिं पाइ॥ १॥

अविगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगैं मीठे फल कौ रस अंतरगत हीं भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन-बानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै॥ २॥

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कैं आँगन, बिम्ब पकरिबैं धावत।
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत।
कनक-भूमि पर कर-पग छाया, यह उपमा इक राजति।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति।
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नंद बुलावति।
अँचरा तर लै ढाँकि, सूर के प्रभु कौं दूध पियावति॥ ३॥

जसुदा कहँ लौं कीजै कानि।
दिन प्रति कैसैं सही परति है, दूध-दही की हानि।
अपने या बालक की करनी, जौ तुम देखौ आनि।
गोरस खाइ, खवावै लरिकनि, भाजत भाजन भानि।
मैं अपने मंदिर के कोनें, राख्यौ माखन छानि।
सोई जाइ तिहारैं ढोटा, लीन्हौ है पहिचानि।
बूझि ग्वालि निज गृह मैं आयौ, नैंकु न संका मानि।
सूर स्याम यह उतर बनायौ, चींटी काढ़त पानि॥ ४॥

साँवरेंहि बरजति क्यौं जु नहीं।
कहा करौं दिन प्रति की बातैं, नाहिन परति सही।
माखन खात, दूध लै डारत, लेपत देह दही।
ता पाछै घरहू के लरिकनि, भाजत छिरकि मही।
जो कछु धरहिं दुराइ, दूरि लै, जानत ताहि तहीं।
सुनहु महरि, तेरे या सुत सौं, हम पचि हारि रहीं।
चोरी अधिक चतुराई सीखी जाइ न कथा कही।
ता पर सूर बछुरुवनि ढीलत, बन-बन फिरति बही॥ ५॥

मैं अपनी सब गाइ चरैहौं।
प्रात होत बल कैं संग जैहौं, तेरे कहें न रैहौं।
ग्वाल बाल गाइनि के भीतर, नैकहुँ डर नहिं लागत।
आजु न सोवौं नंद-दुहाई, रैनि रहौंगौ जागत।
और ग्वाल सब गाइ चरैहैं मैं घर बैठो रैहौं?
सूर स्याम तुम सोइ रहौ अब, प्रात जान मैं दैहौं॥ ६॥

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाइ पिराइँ।
जौं न पत्याहि पूछि वलदाउहिं, अपनी सौंहैं दिवाइ।
यह सुनि माइ जसोदा ग्वालनि, गारी देति रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन वहराइ।
सूर स्याम मेरौ अति वालक, मारत ताहि रिंगाइ॥ ७॥

स्याम कर मुरली अतिहिं विराजति।
परसति अधर सुधारस वरसति, मधुर मधुर सुर वाजति॥
लटकत मुकुट, भौंह-छवि मटकति नैन-सैन अति राजति।
ग्रीव नवाइ अटकि बंसी पर कोटि मदन-छवि लाजति॥
लोल कपोल झलक कुंडल की, यह उपमा कछु लागत।
मानहुँ मकर सुधारस क्रीड़त आपु-आपु अनुरागत॥
वृंदावन विहरत नँद-नंदन, ग्वाल सखा सँग सोहत।
सूरदास प्रभु की छवि निरखत, सुर-नर मुनि सव मोहत॥ ८॥

सखी री, मुरली लीजै चोरि।
जिनि गुपाल कीन्हे अपनैं वस, प्रीति सवनि की तोरि॥
छिन इक घर-भीतर, निसि-वासर, धरत न कवहूँ छोरि।
कवहूँ कर, कवहूँ अधरनि, कटि कवहूँ खोंसत जोरि॥
ना जानौं कछु मेलि मोहिनी, राखे अँग-अँग भोरि।
सूरदास प्रभु कौ कन सजनी, बँध्यौ राग की डोरि॥ ९॥

कहत कान्ह जननी समुझाइ।
जहँ तहँ डारे रहत खिलौना, राधा जनि लै जाइ चुराइ॥
साँझ सवारैं आवन लागी, चितै रहति मुरली-तन आइ।
इनहीं मैं मेरे प्रान वसत हैं, तेरे भाऐं नैंकु न माइ॥
राखि छपाइ, कह्यौ करि मेरौ, वलदाऊ कौं जनि पतिआइ।
सूरदास यह कहति जसोदा, को लैहै मोहिं लगौ वलाइ॥ १०॥

सँदेसौ देवकी सौं कहियौ ।
हौं तो धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ ।।
जदपि टेव तुम जानति उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै ।
प्रात होत मेरे लाल लड़ैतैं, माखन रोटी भावै ।।
तेल उवटनौ अरु तातो जल, ताहि देखि भजि जाते ।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते ।।
सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि दिन, बढ्यौ रहत उर सोच ।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन, ह्वैहै करत सँकोच ।। ११ ।।

ऊधौ मन न भए दस वीस ।
एक हुतौ सो गयौ स्याम सँग, को अवराधै ईस ।।
इंद्री सिथिल भईं केसव विनु, ज्यौं देही विनु सीस ।
आसा लागि रहित तन स्वासा, जीवहिं कोटि वरीस ।।
तुम तौ सखा स्याम सुन्दर के, सकल जोग के ईस ।
सूर हमारैं नंदनँदन विनु, और नहीं जगदीस ।। १२ ।।

ऊधौ मन नहिं हाथ हमारैं ।
रथ चढ़ाइ हरि संग गए लै, मथुरा जबहिं सिधारे ।।
नातरु कहा जोग हम छाँड़हि, अति रुचि कै तुम ल्याए ।
हम तौ झँखति स्याम की करनी, मन लै जोग पठाए ।।
अजहुँ मन अपनौ हम पावैं, तुम तैं होइ तौ होइ ।
सूर सपथ हमैं कोटि तिहारी, कही करैंगी सोइ ।। १३ ।।

ऊधौ जाहु तुमहिं हम जाने।
स्याम तुमहिं ह्याँ कौं नहिं पठयौ, तुम हौ बीच भुलाने ॥
ब्रज नारिनि सौं जोग कहत हौ, वात कहत न लजाने।
वड़े लोग न विवेक तुम्हारे, ऐसे भए अयाने ॥
हमसौं कही लई हम सहि कै, जिय गुनि लेहु सयाने।
कहँ अवला कहँ दसा दिगंवर, मष्ट करौ पहिचाने ॥
साँच कहौं तुमकौं अपनी सौं, बूझति वात निदाने।
सूर स्याम जव तुमहिं पठायौ, तव नैंकहूँ मुसकाने ॥ १४ ॥

निरगुन कौन देस कौ वासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, वूझति साँच न हाँसी ॥
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसे वरन, भेष है कैसौ, किहिं रस मैं अभिलाषी ?
पावैगौ पुनि कियौ आपनौ, जो रे करैगौ गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ वावरौ, सूर सबै मति नासी ॥ १५ ॥

यह गोकुल गोपाल-उपासी।
जे गाहक निरगुन के ऊधौ, ते सब वसत ईस-पुर कासी ॥
जद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि, तदपि रहतिं चरननि रस-रांती।
अपनी सीतलता नहिं छाँड़त, जद्यपि विधु भयो राहु गरासी ॥
किहिं अपराध जोग लिखि पठवत, प्रेम-भगति तैं करत उदासी।
सूरदास ऐसी को विरहिनि, माँगि मुक्ति छाँड़ै गुन-रासी ॥ १६ ॥

ब्रज के विरही लोग दुखारे।
विन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन कारे ॥
नंद जसोदा मारग जोवति, निसि-दिन साँझ सकारे।
चहुँ दिसि कान्ह-कान्ह कहि टेरत, अँसुवन वहत पनारे ॥
गोपी, ग्वाल, गाइ गो-सुत सव, अतिहीं दीन विचारे।
सूरदास प्रभु विनु यौं देखियत, चंद विना ज्यौं तारे ॥ १७ ॥

ऊधौ मोहिं ब्रज विसरत नाहीं।
वृंदावन गोकुल वन उपवन, सघन कुँज की छाहीं॥
प्रात समय माता जसुमति अरु नंद देखि सुख पावत।
माखन रोटी दह्यौ सजायौ, अति हित साथ खवावत॥
गोपी ग्वाल वाल सँग खेलत, सव दिन हँसत सिरात।
सूरदास धनि-धनि ब्रजवासी, जिनसौं हित जदु-तात॥ १८॥

['सूरसागर' से]

प्रश्न

१—सूरदास भगवान के चरणों की वन्दना वार-वार क्यों करना चाहते हैं?
२—सूरदास को निराकार ब्रह्म के वर्णन में क्या कठिनाई है?
३—माखन-चोरी के सम्वन्ध में गोपी यशोदा के पास क्या उलाहना लेकर आयी है?
४—श्रीकृष्ण गाय चराने क्यों जाना चाहते हैं?
५—गोपियाँ कृष्ण की मुरली क्यों चुराना चाहती हैं?
६—यशोदा देवकी के पास क्या संदेश भेजती हैं?
७—उद्धव गोपियों को क्या समझाने गोकुल गये थे?
८—गोपियों ने उद्धव को क्या उत्तर दिया?

अभ्यास

१. लोल कपोल झलक कुंडल की, यह उपमा कछु लागत।
मानहुँ मकर सुधारस क्रीड़त, आपु आपु अनुरागत॥

उपर्युक्त उत्प्रेक्षा में लोल कपोल प्रस्तुत है और सुधारस अप्रस्तुत है तथा कुंडल की झलक प्रस्तुत है और मकर अप्रस्तुत है।

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत अलग-अलग करके लिखिए।

(क) गोपी, ग्वाल, गाइ गोसुत सब, अतिहीं दीन बिचारे।
सूरदास प्रभु बिनु यौं देखियत, चंद बिना ज्यौं तारे॥

(ख) जद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि, तदपि रहति चरननि रस-राती ।
अपनी सीतलता नहिं छाँड़त, जद्यपि बिधु भयो राहु गरासी ॥

(ग) इंद्री सिथिल भईं केसव बिनु, ज्यों देही बिनु सीस ।

(घ) कनक-भूमि पर कर-पग छाया, यह उपमा इक राजति ।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा, कमल बैठकी साजति ॥

२—वात्सल्य के प्रसंग में सूर ने बालक के शारीरिक सौन्दर्य, वस्त्राभूषण, कार्य-कलापों का वर्णन तो किया ही है, पर उनमें बाल-वर्णन का सबसे अधिक महत्त्व बाल-स्वभाव के चित्रण के कारण है। सूर की रचनाओं में से उन पंक्तियों को छाँट कर लिखिए जिनमें बाल-स्वभाव का चित्रण हुआ है।

३—कृष्ण-काव्य में उद्धव-गोपी संवाद भ्रमर-गीत प्रसंग कहा जाता है। सूर के भ्रमर-गीत से ऐसी ५ पंक्तियाँ छाँटिए जिनमें गोपियों ने अपने लिए निराकारोपासना अनुपयुक्त बतायी हो।

४. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिए—

(क) ज्यों गूँगे मीठे फल कौ रस, अंतरगत हीं भावै ।

(ख) और ग्वाल सब गाय चरैहैं, मैं घर बैठो रैहौं ?

(ग) ना जानौ कछु मेलि मोहिनी, राखे अँग-अँग भोरि ।
सूरदास प्रभु कौ मन सजनी, बंध्यौ राग की डोरि ॥

(घ) मेरौ अलक लड़ैतो मोहन ह्वैहै करत सँकोच ।

(च) आसा लागि रहति तन स्वासा, जीवहिं कोटि बरीस ।

(छ) अजहुँ मन अपनो हम पावैं, तुम तें होइ तौ होइ ।
सूर सपथ हमैं कोटि तिहारी, कही करैंगी सोइ ।

तुलसीदास

तुलसीदास रामभक्ति शाखा के सगुणोपासक कवि थे। इनका जन्म सन् १५३२ ई० में बाँदा जिले के राजापुर ग्राम में माना जाता है। कुछ विद्वान इनका जन्म स्थान सोरों (एटा) मानते हैं। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण जन्म के ही समय इनके पिता-माता ने इनको त्याग दिया था। इनका विवाह रत्नावली के साथ हुआ था। ऐसा प्रसिद्ध है, कि रत्नावली के उपदेश से ही इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। इनका जीवन काशी, अयोध्या और चित्रकूट में अधिक व्यतीत हुआ। इनकी मृत्यु सन् १६२३ ई० में काशी में असी घाट पर हुई। इनके गुरु नरहर्यानन्द थे। उन्हीं से इन्होंने रामायण की कथा सुनी थी। काशी के विद्वान पंडित शेष सनातन से इन्होंने शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त किया।

ये राम के भक्त थे। इनकी भक्ति दास्य-भाव की थी। संवत् १६३१ में इन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ **रामचरितमानस** की रचना आरम्भ की। इनके इस ग्रंथ में विस्तार के साथ राम के चरित्र का वर्णन है। तुलसी के राम में शक्ति, शील और सौन्दर्य तीनों गुणों का अपूर्ण सामंजस्य है। मानव जीवन के सभी उच्चादर्शों का समावेश करके इन्होंने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम बना दिया है। रामचरितमानस बड़ा ही लोक-प्रिय ग्रंथ है। विश्व-साहित्य के प्रमुख ग्रंथों में इसकी गणना की जाती है। **रामचरितमानस** के अतिरिक्त इन्होंने **जानकी-मंडल, पार्वती-मंडल, रामलला नहछू, रामाज्ञा-प्रश्न, बरवै रामायण, दोहावली, कवितावली, गीतावली** तथा **विनय-पत्रिका** आदि ग्रंथों की रचना की।

इनकी रचनाओं में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण चित्रण देखने को मिलता है। **रामचरितमानस** आज भी देश की जनता को आदर्श जीवन के निर्माण की प्रेरणा प्रदान करता है।

अपने समय तक प्रचलित दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, पद आदि काव्य-शैलियों में तुलसी ने पूर्ण सफलता के साथ काव्य-रचना की है। इनके काव्य में भाव-पक्ष के साथ कला-पक्ष की भी पूर्णता है। उसमें सभी रसों का आनन्द प्राप्त होता है। स्वाभाविक रूप में सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग करके तुलसी ने अपनी

रचनाओं को प्रभावोत्पादक बना दिया है। इनका व्रज भाषा तथा अवधी भाषा पर समान अधिकार था। कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका आदि रचनाएँ व्रजभाषा में हैं और रामचरितमानस अवधी में। अवधी को साहित्यिक रूप प्रदान करने के लिए इन्होंने संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया है पर इससे कहीं भी दुरूहता नहीं आने पायी है। इनके काव्य के कलापक्ष की पूर्णता देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास संस्कृत भाषा के साथ-साथ काव्य-शास्त्र के भी पंडित थे।

———

जनकपुर में राम-लक्ष्मण

लषन हृदयँ लालसा विसेखी। जाइ जनकपुरु आइअ देखी ॥
प्रभु भय वहुरि मुनिहिं सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहि मुसकाहीं ॥
राम अनुज मन की गति जानी। भगत वछलता हिअँ हुलसानी ॥
परम विनीत सकुचि मुसकाई। वोले गुरु अनुसासन पाई ॥
नाथ लषन पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगरु देखाइ तुरत लै आवौं ॥
सुनि मुनीसु कह वचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती ॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम विवस सेवक सुख दाता ॥

दो०—जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाइ ॥ १ ॥

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता ॥
बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मन लोभा ॥
पीत वसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा ॥
तन अनुहरत सुचंदन खौरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी ॥
केहरि कंधर वाहु बिसाला। उर अति रुचिर नाग मनि माला ॥
सुभग स्रोन सरसीरुह लोचन। वदन मयंक ताप त्रय मोचन ॥
कानन्हि कनकफल छवि देहीं। चितवत चितहि चोरि जन लेहीं ॥
चितवनि चारु भृकुटि वर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥

दो०—रुचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस।
नख सिर सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥ २ ॥

देखन नगरु भूप सुत आए। समाचार पुरवासिन्ह पाए ॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ॥
निहरखि सज सुन्दर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई ॥
जुवतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनरागीं ॥

कहहिं परसपर वचन सप्रीती । सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती ॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं । सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं ॥
विष्नु चारिभज बिधि मुख चारी । विकट भेष मुखपंच पुरारी ॥
अपर देउ अस कोउ न आही । येह छवि सखी पटतरिअ जाही ॥

दो०—बय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुख धाम ।
अंग-अंग पर वारिअहिं कोटि-कोटि सत काम ॥ ३ ॥

कहहु सखी अस को तनु धारी । जो न मोह येहु रूप निहारी ॥
कोउ सप्रेम वोली मृदु वानी । जो मैं सुना सो सुनहु सयानी ॥
ए दोऊ दसरथ के ढोटा । वाल मरालन्हि के कल ज़ोटा ॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे । जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ॥
स्याम गात कल कंज विलोचन । जो मारीच सुभुज मदु मोजन ॥
कौसल्या सुत सो सुख खानी । नामु रामु धनु सायक पानी ॥
गौर किसोर वेषु वर काछें । कर सर चाप राम कें पाछें ॥
लछिमनु नामु रामु लघु भ्राता । सुनि सखि तासु सुमित्रा माता ॥

दो०—बिप्र काजु करि बंधु दोउ मग मुनि बधू उधारि ।
आए देखन चाप मख सुनि हरषीं सब नारि ॥ ४ ॥

देखि राम छवि कोउ एक कहई । जोगु जानकिहि येहु वरु अहई ॥
जौ सखि इन्हहिं देख नरनाहू । पन परिहरि हठि करै विवाहू ॥
कोउ कह ए भूपति पहिचाने । मुनि समेत सादर सनमाने ॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई । विधि वस हठि अविबेकहि भजई ॥
कोउ कह जौं भल अहै विधाता । सव कहुँ सुनिअ उचित फलदाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि वरु एहू । नाहिन आलि इहाँ संदेहू ॥
जौं विधि वस अस बनै सँजोगू । तौ कृतकृत्य होइ सव लोगू ॥
सखि हमरें आरति अति तातें । कवहुंक ए आवहिं येहिं नातें ॥

दो०—नाहिं त हमकहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि ।
येह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि ॥ ५ ॥

बोली अपर कहेहु सखि नीका । येहिं विवाह अति हित सबहीं का ॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा । ये स्यामल मृदु गात किसोरा ॥
सबु असमंजस अहइ सयानी । येह सुनि अपर कहै मृदु वानी ॥
सखि इन्हकहँ कोउ कोउ अस कहहीं । बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं ॥
परसि जासु पद पंकज धूरी । तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥
सो कि रहिहि विनु सिवधनु तोरें । येह प्रतीति परिहरिअ न भोरें ॥
जेहिं विरंचि रचि सीय सँवारी । तेहिं स्यामल वरु रचेउ विचारी ॥
तासु वचन सुनि सब हरषानीं । ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं ॥

दो०—हिय हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद ।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानन्द ॥ ६ ॥

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई । जहँ धनु मख हित भूमि बनाई ॥
अति विस्तार चारु गच ढारी । विमल बेदिका रुचिर सँवारी ॥
चहुँ दिसि कंचन मंच विसाला । रचे जहाँ बैठहिं महिपाला ॥
तेहिं पाछें समीप चहुँ पासा । अपर मंच मंडली विलासा ॥
कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई । बैठहिं नगर लोग जहँ जाई ॥
तिन्हकें निकट विसाल सुहाए । धवल धाम बहु बरन बनाए ॥
जहँ बैठे देखहिं सब नारीं । जथाजोग निज कुल अनुहारीं ॥
पुर वालक कहि कहि मृदु वचना । सादर प्रभुहिं देखावहिं रचना ॥

दो०—सब सिसु येहि मिसु प्रेम बस परसि मनोहर गात ।
तन पुलकहिं अति हरष हिअँ देखि देखि दोउ भ्रात ॥ ७ ॥

सिसु सब राम प्रेम बस जाने । प्रीति समेत निकेत बखाने ॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई । सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ॥
रामु देखावहिं अनुजहि रचना । कहि मृदु मधुर मनोहर वचना ॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया । रचै जासु अनुसासन माया ॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला । चितवत चकित धनुष मखसाला ॥
कौतुकु देखि चले गुर पाहीं । जानि बिलंबु त्रास मन माहीं ॥

जासु त्रासु डर कहुँ डर होई । भजद प्रभाउ देखावत सोई ॥
कहि बातैं मृदु मधुर सुहाई । किए विदा वालक बरिआई ॥

दो०—सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ ।
गुरु पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ ॥ ८ ॥

निसि प्रबेस मुनि आयेसु दीन्हा । सवहीं संध्या बंदनु कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी । रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥
मुनिवर सयन कीन्हि तव जाई । लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
जिन्ह कें चरन सरोरुह लागी । करत विविध जप जोग बिरागी ॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुरु पद कमल पलोटत प्रीते ॥
वार वार मुनि आज्ञा दीन्ही । रघुवर जाइ सयन तव कीन्ही ॥
चापत चरन लषनु उर लाएँ । सभय सप्रेम परम सचु पाएँ ॥
पुनि-पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पौढ़े धरि उर पद जलजाता ॥

दो०—उठे लषनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान ।
गुरु तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान ॥ ९ ॥

[रामचरितमानस : बालकांड से]

पद

कवहुँक अंब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्यायवी कछु करुन-कथा चलाइ ॥
दीन सव अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ॥
बूझिहैं 'सो है कौन' ? कहिवी नाम दसा जनाइ ।
सुनत राम कृपालु के मेरी विगरिऔ वनि जाइ ॥
जानकी जगजननि जन की किए वचन-सहाइ ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुनगन गाइ ॥ १ ॥

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी ।
देह-गेह-नेह जानु जैसे घन-दामिनी ।

सोवत सपने सहै संसृति-संताप, रे !
बूड़ो मृगवारि, खायो जेंवरी को साँप रे !
कहैं बेद बुध तू तौ बूझि मन माँहि रे !
दोष दुख सपने के जागे ही पै जाँहि, रे !
तुलसी जागे तें जाइ ताप तिहुँ ताय, रे !
रामनाम सुचि रुचि सहज सुभाय, रे ।। २ ।।

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ ।।
जाहि दीनता कहौं, हौं दीन देखौं सोऊ ।।
मुनि सुर नर नाग असुर साहिब तौ घनेरे ।
पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे ।।
त्रिभुवन तिहुँ काल विदित, बदत बेद चारी ।
आदि, अंत, मध्य राम साहिबी तिहारी ।।
तोहिं माँगि माँगनो न माँगनो कहायो ।
सुनि सुभाव, सील, सुजस जाचन जन आयो ।।
पाहन, पसु, विटप, विहँग अपने करि लीन्हें ।
महाराज दसरथ के ! रंक राय कीन्हें ।।
तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो ।
वारक कहिये कृपालु ! तुलसीदास मेरो ।। ३ ।।

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते ।।
सहसबाहु, दसवदन आदि नृप बचे न काल बली ते ।
हम-हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ।।
सुत वनितादि जाति स्वारथ-रत न करु नेह सबही तें ।
अंतहुँ तोहिं तजैंगे पामर ! तू न तजै अबही तें ।।
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी तें ।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ विषय-भोग बहु घी तें ।। ४ ।।

ऐसो को उदार जग माहीं ?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं ॥
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी ।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी ॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं ।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं ॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो ।
तौ भजु राम काम सब पूरन करैं कृपानिधि तेरो ॥ ५ ॥

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतित पावन जग ? केहि अति दीन पियारे ?
कौने देव बराय बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे ।
खग, मृग, ब्याध, पखान, विटप जड़ जवन कवन सुर तारे ?
देव, दनुज, मुनि, नाग मनुज सब माया-बिवस बिचारे ।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ? ॥ ६ ॥
[विनय-पत्रिका से]

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता ॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं ।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं ॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी ।
गनक बोलाइ पाँय परि पूँछति प्रेम-मगन मृदु बानी ॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो ।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥ ७ ॥
[गीतावली से]

वन पथ पर

पुर तें निकसी रघुवीर-वधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै ॥

फिरि बूझति हैं—"चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै ?"
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै ॥ १ ॥

"जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े" ॥
तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि विलंव लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, वारि विलोचन वाढ़े ॥ २ ॥

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे, कर सायक लै ।
विकटी भ्रुकुटी वड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छवि है ॥
तुलसी असि मूरति आनि हिए जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै ।
स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महातम तारक मैं ॥ ३ ॥

वनिता वनी स्यामल गौर के वीच, विलोकहु, री सखी ! मोहि सी ह्वै ।
मग जोग न, कोलल, क्यों चलिहैं ? सकुचात मही पदपंकज छ्वै ॥
तुलसी सुनि ग्रामवधू विथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै ।
सव भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के वालक द्वै ॥ ४ ॥

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है ।
वान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनिबेष कियो है ॥
संग लिये विधु-बैनी वधू रति को जेहि रंचक रूप दियो हैं ।
पाँयन तो पनहीं न, पयादेहिं क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है ॥ ५ ॥

रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है ।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, विछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ? ।
आँखिन मैं, सखि ! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै वनवास दियो है ? ॥ ६ ॥

सीस जटा, उर वाहु विसाल, विलोचन लाल, तिरीछी सी भौंहैं ।
तून सरासन वान धरे, तुलसी वन-मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर वारहिं वार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्राम वधू सिय सों 'कहौ, साँवरे से, सखि रावरे को हैं ?' ॥ ७ ॥

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्है, समुझाइ कछू मुसकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली ।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै विगसीं मनो मंजुल कंज-कली ॥ ८ ॥

विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा विनु नारि दुखारे ।
गोतमतीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे ॥
ह्वैहैं सिला सव चन्द्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे ।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे ॥ ९ ॥

[कबितावली : अयोध्याकाण्ड से]

प्रश्न

मानस

१–लक्ष्मण ने नगर देखने की इच्छा स्पष्ट रूप से क्यों नहीं व्यक्त की ?

२–राम-लक्ष्मण को देखकर जनकपुर वासियों ने क्या किया ?

३–राम तथा लक्ष्मण की शोभा देखकर जनकपुर की स्त्रियों ने परस्पर क्या वातचीत की ?

४–जब राम धनुष-यज्ञ का मंडप देखकर गुरु के पास चले, तव उनके मन में त्रास क्यों उत्पन्न हुआ ?

५–तुलसी ने इस प्रसंग में किन छंदों का प्रयोग किया है ?

विनयपत्रिका

६–तुलसी सीताजी से रामचन्द्रजी को अपनी याद किस प्रकार दिलाने की प्रार्थना करते हैं ?

७–तुलसीदास जीवात्मा और शरीर के प्रेम सम्वन्ध को किस प्रकार का सम्वन्ध समझने का उपदेश देते हैं ?

८–तुलसीदास अपनी दीनता प्रकट करने के लिए किसी अन्य देवता के पास क्यों नहीं जाते ?

९–राम ने किन-किन को अपना लिया और किन रंकों को राजा बना दिया ?

१०–तुलसीदास अभी से किसको त्यागने के लिए कह रहे हैं ?

११–तुलसी के मत से राम के समान उदार संसार में कोई दूसरा क्यों नहीं है ?

१२–सव प्रकार के सुख प्राप्त करने का तुलसीदासजी क्या उपाय बताते हैं ?

गीतावली

१३—कौशल्या ने ज्योतिषियों को क्यों बुलाया ?

कवितावली

१४—सीताजी किस पुर से निकलीं ?
१५—सीताजी ने राम से क्या प्रश्न किया ?
१६—राम के नेत्रों से अश्रुधार क्यों प्रवाहित हुई ?
१७—गाँव की स्त्री अपनी सखी से वन-पथ पर जाते हुए राम लक्ष्मण तथा सीता को किस प्रकार देखने के लिए कहती है ?
१८—उस स्त्री की बात सुनकर गाँव की अन्य स्त्रियों की क्या दशा हो गयी ?
१९—गाँव की स्त्रियों ने सीता से क्या प्रश्न किया ?
२०—सीताजी ने गाँव की स्त्रियों को उनके प्रश्न का किस प्रकार उत्तर दिया ?
२१—विंध्याचल पर निवास करने वाले ऋषि-मुनि अपने क्षेत्र में राम के आगमन की बात सुनकर क्यों प्रसन्न हुए ?

अभ्यास

१—निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए—

(क) धरम सेतु पालक तुम ताता।
(ख) चितवनि चारु भृकुटि वर बाँकी। तिलकरेख सोभा जनु चाँकी।
(ग) येह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि।
(घ) बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं।
(च) सोवत सपने सहै संसृति संताप, रे।
बूड़ो मृगवारि खायो जेंवरी को साँप रे।
(छ) दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते।
(ज) कौने देव बराय बिरद हित हठि हठि अधम उधारे।
(झ) मन जोग न, कोमल, क्यों चलिहै ? सकुचात मही पदपंकज छ्वै।
(ट) संग लिये बिधु-बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
(ठ) अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली।

२—निम्नलिखित पंक्तियों के सम्मुख उनमें पाये जाने वाले अलंकार (क) के अनुसार लिखिए—

पंक्तियाँ	अलंकार
(क) मुनिपद कमल वंदि दोउ भ्राता ।	रूपक
(ख) सुभग स्रोन सरसीरुह लोचन ।	
(ग) चितवनि चारु भृकुटि वर बाँकी । तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ।	
(घ) धाए धाम काम सब त्यागी । मनहुँ रंक निधि लूटन लागी ।	
(ङ) स्राम-सीकर साँवरि देह लसै, मनो रासि महातम तारक मैं ।	

३—निम्नलिखित पंक्ति में रूपक अलंकार है। उसमें से प्रस्तुत और अप्रस्तुत को छाँटकर प्रस्तुत के समक्ष उसका अप्रस्तुत लिखिए ।

बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ बिषय भोग बहु घी तें ।

प्रस्तुत	अप्रस्तुत

४—सीताजी के नेत्रों में आँसू आने के कुछ कारण नीचे दिये हुए हैं जिनमें से केवल एक कारण सही है। सही कारण के सामने कोष्ठक में सही का (✓) चिह्न लगाइए :

(क) सीताजी को बहुत प्यास लगी थी । ( )

(ख) रामचन्द्रजी के पैरों में बहुत से काँटे लग गये थे । ( )

(ग) रामचन्द्रजी ने स्नेह-वश सीताजी को विश्राम देने के लिए अपने पैरों के काँटे देर तक निकालने का अभिनय किया । ( )

(घ) सीताजी के पैर गरम धूल में जल गये थे । ( )

५—कवितावली के 'वन पथ पर' प्रसंग से ऐसी पाँच पंक्तियाँ छाँटकर लिखिए जिनमें राम के रूप-सौन्दर्य का वर्णन किया गया हो ।

६—रामचरितमानस में वन पथ पर प्रसंग खोज कर पढ़िए। इस प्रसंग में ग्राम-वधुओं ने सीता से राम का परिचय पूछा है। सीता ने पहले लक्ष्मण का परिचय दिया और फिर संकेत से राम का परिचय दे दिया। इस स्थल की चौपाइयों को कंठस्थ कीजिए ।

मीराबाई

मीराबाई का जन्म सन् १४९८ ई० के लगभग राजस्थान में मेड़ता के पास चोकड़ी ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम रत्नसिंह था। उदयपुर के राणा साँगा के पुत्र भोजराज के साथ इनका विवाह हुआ था। विवाह के कुछ ही समय बाद इनके पति की मृत्यु हो गयी। मीरा की मृत्यु सन् १५४६ ई० के आस-पास मानी जाती है।

मीरा बचपन से ही कृष्ण की भक्त थीं। गोपियों की भाँति मीरा माधुर्य भाव से कृष्ण की उपासना करती थीं। ये कृष्ण को ही अपना पति कहती थीं और लोक-लाज खोकर कृष्ण के प्रेम में लीन रहती थीं। बचपन से ही ये अपना अधिक समय संत-महात्माओं के सत्संग में व्यतीत करती थीं। मन्दिर में जाकर अपने आराध्य की प्रतिमा के समक्ष ये आनन्द विह्वल होकर नृत्य करती थीं। इनका इस प्रकार का व्यवहार उदयपुर की राजमर्यादा के प्रतिकूल था। अतः परिवार के लोग इनसे रुष्ट रहते थे।

नरसीजी का मायरा, रागगोविन्द, राग सोरठ में पद तथा गीत-गोविन्द की टीका मीरा की रचनाएँ हैं।

मीरा ने गीत काव्य की रचना की और कृष्णभक्त कवियों की परम्परागत पद-शैली को भी अपनाया। मीरा के सभी पद संगीत के स्वरों में बँधे हुए हैं। इनके गीतों में इनकी आवेशपूर्ण आत्माभिव्यक्ति मिलती है। प्रियतम के समक्ष आत्म-समर्पण की भावना तथा तन्मयता ने इनके काव्य को मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक बना दिया है। कृष्ण के प्रति प्रेमभाव की व्यंजना ही इनकी कविता का उद्देश्य रहा। जीवन-भर मीरा कृष्ण की वियोगिनी बनी रहीं। इनके काव्य में हृदय की आवेशपूर्ण विह्वलता देखने को मिलती है।

मीरा की काव्य-भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रज-भाषा के निकट है तथा उस पर राजस्थानी, गुजराती, पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनका काव्य-भाषा अत्यन्त मधुर, सरस और प्रभावपूर्ण है।

पदावली

वसो मेरे नैनन में नँदलाल ।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, अरुण तिलक दिए भाल ।।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति, नैन बने विसाल ।
अधर-सुधा-रस मुरली राजत, उर बैजंती-माल ।।
छुद्र घंटिका कटि-तट सोभित, नपुर सवद रसाल ।।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त वछल गोपाल ।। १ ।।

भज मन चरण-कँवल अविनासी ।
जेताइ दीसे धरण-गगन-विच, तेताइ सव उठि जासी ।।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत-कासी ।।
इस देही का गरव न करणा, माटी में मिल जासी ।
यो संसार चहर की वाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी ।।
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये सन्यासी ।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी ।।
अरज करूँ अवला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ।। २ ।।

पायो जी म्हैं तो राम रतन धन पायो ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो ।
जनम-जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो ।
खरचै नहिं कोइ चोर न लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायो ।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भव-सागर तर आयो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरख-हरख जस गायो ।। ३ ।।

माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल ।
कोई कहै छाने कोई कहे चुपके, लियो री बजन्ता ढोल ।।

कोई कहै मुँहघो कोई कहै सुँहघो, लियो री तराजू तोल ।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल ॥
याही कूँ सब जाणत हैं, लियो री आँखीं खोल ।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीन्यौ, पूरव जनम कौ कौल ॥ ४ ॥

हरी तुम हरौ जन की भीर
द्रोपदी की लाज राखी, तुरत वाढ्यो चीर ॥
भगत कारण रूप नर हरि, धर्‍यो आप सरीर ।
हिरणाकुश मारि लीन्हौं, धर्‍यो नाहिन धीर ॥
बूड़तो गजराज राख्यो, कियो वाहर नीर ।
दासी मीराँ लाल गिरधर, चरण कँवल पे सीर ॥ ५ ॥

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ।
गिरधर म्हाँरों साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ॥
रैण पड़ै तव ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ ।
रैणदिना वाके सँग खेलूँ, ज्यूँ-त्यूँ वाहि रिझाऊँ ॥
जो पहिरावै सोई पहिरूँ जो दे सोई खाऊँ ।
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण विन पल न रहाऊँ ॥
जहँ बैठावैं तितही बैठूँ, बेचै तो विक जाऊँ ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वार-वार बलि जाऊँ ॥ ६ ॥

हे री ! मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरो दरद न जाणै कोय ॥
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विधि होय ।
गगन मंडल पर सेज पिया की, किस विध मिलणा होय ॥
घायल की गति घायल जाणै, की जिण लाई होय ।
जौहरि की गति जौहरी जाणै, की जिण जौहर होय ॥
दरद की मारी बन-वन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोय ।
मीराँ की प्रभ पीर मिटेगी, जद बैद साँवलिया होय ॥ ८ ॥

मैं तो साँवरे के रंग राची ।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोक-लाज तजि नाँची ॥
गई कुमति लई साधु की संगति, भगत रूप भई साँची ।
गाय-गाय हरि के गुण निसदिन, काल व्याल सूँ बाँची ॥
उण विन सव जग खारो लागत, और बात सब काँची ।
मीराँ श्री गिरधरन लाल सूँ, भगति रसीली जाँची ॥ ८ ॥

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ॥
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात वन्धु, आपनो न कोई ॥
छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई ।
संतन ढिग बैठि-बैठि, लोक लाज खोई ॥
अँसुवन लज सींचि-सींचि, प्रेम बेलि बोई ॥
अब तो बेल फैल गयी, आणंद फल हौई ॥
भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई ।
दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोई ॥ ९ ॥

नहिं ऐसो जनम वारम्वार ।
क्या जानूँ कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार ॥
वढ़त पल-पल, घटत छिन-छिन, जात न लागे वार ।
विरछ के ज्यों पात टूटे, वहुरि न लागे डार ॥
भौसागर अति जोर कहिये, विषम ऊँडी धार ।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार ॥
ज्ञान-चौसर मँडी चौहटे, सुरत पासा सार ।
या दुनिया में रची बाजी, जीत भावैं हार ॥
साधु सन्त महन्त ज्ञानी, चलत करत पुकार ।
दासी मीराँ लाल गिरधर, जीवणा दिन चार ॥ १० ॥

[मीरा सुधा-सिन्धु से]

प्रश्न

१–मीरा भगवान के किस रूप की उपासिका थीं ?

२–शरीर पर गर्व न करने का उपदेश मीरा क्यों देती हैं ?

३–उन्होंने संसार की तुलना किससे की है और क्यों ?

४–धर्म के अन्तर्गत केवल बाहरी कर्मकांड करने का क्या परिणाम होता है ?

५–मीरा को कौन-सा धन प्राप्त हो गया है ? उस धन की क्या विशेषताएँ हैं ?

६–मीरा ने क्या मोल लिया है ?

७–मीरा के इस क्रय के सम्बन्ध में संसार के लोगों की क्या धारणा है ?

८–उसके सम्बन्ध में मीरा क्या कहती हैं ?

९–किन-किन भक्तों के कष्ट दूर करने का स्मरण मीरा भगवान को कराती हैं ?

१०–मीरा कृष्ण के घर जाने की बात क्यों कहती हैं ?

११–मैं गिरधर के घर जाऊँ पद से मीरा की भक्ति की कौन-सी विशेषता ज्ञात होती है ?

१२–मीरा कृष्ण के मिलन में किस प्रकार की कठिनाई अनुभव करती हैं ?

१३–मीरा ने प्रेम की लता को किस प्रकार पल्लवित किया ? उस लता से उनको क्या फल प्राप्त हुआ ?

१४–मीरा संसार-सागर को पार करने का क्या उपाय बताती हैं ?

अभ्यास

२–नीचे मीरा द्वारा कृष्ण को मोल लेने के सम्बन्ध में कुछ तथ्य दिए हुए हैं जिनमें से कुछ सही हैं और कुछ सही नहीं हैं। सही तथ्यों को छाँटिए।

(१) मीरा ने सबके सामने घोषणा करते हुए कृष्ण को मोल लिया।

(२) मीरा ने थोड़ा-सा मूल्य चुका कर कृष्ण को खरीदा।

(३) मीरा ने बिना ध्यान दिए हुए और बिना सतर्कता बरते कृष्ण को खरीद लिया।

(४) मीरा ने तराजू से तोल कर कृष्ण को मोल लिया।

(५) मीरा के इस क्रय के सम्बन्ध में संसार के लोगों की धारणा सही रही।

२–नीचे एक स्तम्भ में भगवान के द्वारा किये गये कार्य लिखे गये हैं। तीसरे स्तम्भ में भगवान के भक्तों की कठिनाइयाँ बिना क्रम से दी हुई हैं। बीच के स्तम्भ

में भगवान के द्वारा किये गये कार्य के सामने भक्त की उस कठिनाई को लिखिए जिसका निवारण हुआ।

क्रमांक प्रथम स्तम्भ	द्वितीय स्तम्भ	तृतीय स्तम्भ
१–भगवान गरुड़ को छोड़कर नंगे पैर दौड़े आये		हरिणकश्यप अपने पुत्र प्रह्लाद पर अत्याचार कर रहा था।
२–भगवान ने चीर बढ़ाया		गज को ग्राह ने पकड़ लिया था।
३–भगवान ने नृसिंह-रूप धारण किया		दुर्योधन की सभा में दु:शासन द्रौपदी की साड़ी खींच रहा था।

३–नीचे मीरा की रचना से कुछ पंक्तियाँ दी हुई हैं। इनमें से जिन पंक्तियों से मीरा की अपने आराध्य के प्रति आत्म-समर्पण की भावना व्यक्त होती हो उन्हें छाँटिए।

(क) मीराँ प्रभु संतन सुखदाई भगत बछल गोपाल।
(ख) अरज करूँ अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
(ग) द्रोपदी की लाज राखी तुरत बाढ़्यो चीर।
(घ) जहँ बैठावें तितही बैठूं बेचें तो बिक जाऊँ।
(च) साजि सिंगार बाँधि पग घुंघरू लोक-लाज तजि नाँची।
(छ) जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।

४–मीरा के पदों से दो ऐसी पंक्तियाँ छाँटकर लिखिए जिनमें उनके प्रेम की पीर व्यक्त हुई हो।

५–मीरा की रचना से वे पंक्तियाँ छाँटकर लिखिए जिनमें रूपक अलंकार आया हो।

६–निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए—

(क) यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड़्याँ उठ जासी।
(ख) वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।
(ग) कोई कहै मुँहघो कोई कहै सुँहघो, लियो री तराजू तोल।
(घ) गगन मंडल पर सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।
(च) ज्ञान-चौरस मँडी चौहटे सुरत पासा सार।

७–मीरा के पदों से उदाहरण देकर गीत-काव्य की विशेषताएँ लिखिए

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास का जन्म सन् १४९३ ई० के लगभग सीतापुर जिले के बाड़ी ग्राम में हुआ था। इनका लिखा हुआ केवल एक छोटा खण्ड काव्य 'सुदामा-चरित' उपलब्ध है। यह ग्रंथ इतना सुन्दर और भावपूर्ण है कि इसी के कारण नरोत्तमदास का नाम काव्य-जगत में अमर हो गया है।

'सुदामा-चरित' में नरोत्तमदास ने कृष्ण और सुदामा की आदर्श मित्रता का वर्णन किया है। इस काव्य में कवि को कथा के वर्णन में जैसी सफलता मिली है वैसी ही सफलता मार्मिक मनोभावों के चित्रण में भी। नरोत्तमदास ने जहाँ दरिद्रता में व्यतीत होने वाले सुदामा के जीवन एवं पारिवारिक परिस्थितियों का तथा ऐश्वर्य और वैभव से सम्पन्न कृष्ण की द्वारकापुरी का सजीव वर्णन किया है वहाँ उन्होंने मित्र की दुर्दशा देखकर कृष्ण के हृदय में उमड़ी करुणा का तथा सुदामा के आत्म-सम्मान की भावनाओं का भी हृदय-स्पर्शी चित्रण किया है। सुदामा तथा उनकी पत्नी के बीच होने वाले कथोपकथन में भारतीय दाम्पत्य जीवन का मार्मिक तथा सजीव रूप व्यक्त हुआ है।

स्वाभाविक चित्रण नरोत्तमदास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है। उपमा, रूपक और अनुप्रास आदि के प्रयोग से काव्य-सौन्दर्य का उत्कर्ष हुआ है। नरोत्तमदास ने प्रमुखतः कवित्त सवैया का और कहीं पर दोहा छन्द का भी प्रयोग किया है। इनके छन्दों में कथा का स्वाभाविक प्रवाह मिलता है। इनकी भाषा व्रजभाषा है। भाषा की स्वच्छता, सरलता तथा सजीवता इनके काव्य की लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। इनकी भाषा में परिस्थितियों को साकार स्वरूप देने की अद्भुत क्षमता है।

सुदामा-चरित

विप्र सुदामा बसत हैं सदा आपने धाम ।
भिच्छा करि भोजन करैं, हिये जपैं हरि नाम ॥ १ ॥

ताकी घरनी पतिब्रता गहे बेद की रीति ।
सुबुधि सुसील सुलज्ज अति पति सेवा सों प्रीति ॥ २ ॥

कही सुदामा एक दिन, कृस्न हमारे मित्र ।
करत रहनि उपदेश तिय, ऐसो परम विचित्र ॥ ३ ॥

लोचन-कमल दुख-मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल, मुकुट धरे माथ हैं ।
ओढ़े पीत-वसन गरे में बैजयन्ती माल,
संख-चक्र-गदा और पद्म धरे हाथ हैं ।
कहत 'नरोत्तम' संदीपन गुरू के पास,
तुमही कहत, हम पढ़े एक साथ हैं ।
द्वारका के गए, हरि दारिद हरैंगे, पिय,
द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥ ४ ॥

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय ! ताको कहा अब देति है सिच्छा ।
जे तप कै परलोक सुधारत, सम्पति की तिनके नहि इच्छा ॥
मेरे हिये हरि के पद-पंकज, वार हजार लै देखु परिच्छा ।
औरन को धन चाहिये बावरि, बाँभन के धन केवल भिच्छा ॥ ५ ॥

कोदों सवाँ जुरतो भरि पेट, तौ चाहति ना दधि दूध मिठौती ।
सीत वितीत भयो सिसयातहिं, हौं हठिकै यों तुम्हें न पठौती ॥
जानती जो न हितू हरि सों, तुम्हें काहे को द्वारकै पेलि पठौती ।
या घर तै न गयो कबहूँ पिय ! टूटो तबौ अरु फूटी कठौती ॥ ६ ॥

छाँड़ि सबै जक तोहिं लगो वक, आठहु जाम यहै हठ ठानी।
जातहि देहैं लदाय लढ़ा भरि, लैहौं लिवाय यहै जिय जानी॥
पैयै कहाँ ते अटारी-अटा, विधि दीन्हीं जु यै वस टूटियै छानी।
जो पै दरिद्र लिख्यो है लिलार, तो काहु पै मेटि न जात अजानी॥ ७॥

विप्रन के भगत जगत के विदित वन्धु,
लेत सवही की सुधि ऐसे महा दानि हैं।
पढ़े एक चटसार कही तुम कैयो वार,
लोचन अपार वै तुम्हैं न पहिचानिहैं।
एक दीनवन्धु, कृपासिंधु, फेरि गुरुवन्धु,
तुम सौ को दीन, जाहि निज जिय जानिहैं।
नाम लेत चौगुनी, गये ते द्वार सौगुनी सो,
देखत सहसगुनी, प्रीति प्रभु मानिहैं॥ ८॥

प्रीति में चूक नहीं उनके हरि मो मिलिहैं उठि कंठ लगायकै।
द्वार गये कछु देहैं पै देहैं, वे द्वारकानाथ जु हैं सब लायकै।
जे विधि वीत गये पन द्वै, अव तौ पहुँचो विरधापन आयकै।
जीवन शेष अहै दिन केतिक, होहुँ हरी सो कनावड़ों जाय कै॥ ९॥

हूजो कनावड़ो वार हजार लौं, जो हितू दीनदयाल सों पाइए।
तीनहु लोक के ठाकुर जे, तिनके दरबार न जात लजाइए।
मेरी कही जिय में धरि कै पिय, भूलि न और प्रसंग चलाइए।
और के द्वार सो काज कहा पिय, द्वारकानाथ के द्वार सिधाइए॥ १०॥

द्वारका जाहु जू द्वारका जाहु जू, आठहु जाम यहै झक तेरे।
जो न कहौ करिये तौ बड़ो दुख, जैये कहाँ अपनी गति हेरे॥
द्वार खड़े प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।
पाँच सुपारी तौ देख बिचारि कै भेंट को चारि न चाँवर मेरे॥ ११॥

दीठि चकाचौंधि गई देखत सुवर्नमई,
एक ते सरस एक द्वारका के भौन हैं ।
पूछे विनु कोऊ कहूँ काहू सों न करै बात,
देवता से बैठे सव साधि-साधि मौन हैं ।
देखत सुदामा धाय पौर जन गहे पाय,
कृपा करि कहौ विप्र कहाँ कीन्हौं गौन हैं ।
धीरज अधीर के हरन पर पीर के,
वताओ वलवीर के महल यहाँ कौन हैं ।। १२ ।।

सीस पगा न झँगा तन में, प्रभु ! जाने को आहि वसे केहि ग्रामा ।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु, पाँय उपानह की नहिं सामा ।
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक, रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल को धाम, वतावत आपनो नाम सुदामा ।। १३ ।।

वोल्यो द्वार पालक 'सुदामा नाम पाड़े' सुनि,
छाँड़े राज काज ऐसे जी की गति जानै को ?
द्वारका के नाथ हाथ जोरि धाय गहे पांय,
भेंटे भरि अंक लपटाय दुख साने को ?
नैन दोऊ जल भरि, पूछत कुसल हरि,
विप्र बोल्यो विपदा में मोहि पहिचानै को ?
जैसी तुम करी वैसी करै को दया के सिंधु,
ऐसी प्रीति दीनबन्धु ! दीनन सों माने को ।। १४ ।

ऐसे बेहाल विवाइन सों, पग कण्टक जाल लगे पुनि जोए ।
हाय महादुख पायो सखा तुम आए इतै न कितै दिन खोए ।।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करि कै करुनानिधि रोए ।
पानी परात को हाथ छयो नहिं, नैनन के जल सों पग धोए ।। १५ ।।

कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ।
चाँपि पोटरी काँख में, रहे कहो कहि हेतु ॥ १६ ॥

आगे चना गुरुमातु दए ते, लए तुम चावि हमें नहिं दीने ।
स्याम कह्यो मुसकाय सुदामा सौं, चोरी की वान में हौ जू प्रवीने ॥
पोटरी काँख में चाँपि रहे तुम, खोलत नाहिं सुधा रस भीने ।
पाछिली वानि अजौ न तजी तुम, तैसई भाभी के तन्दुल कीन्हे ॥ १७ ॥

हाथ गह्यो प्रभु, को कमला, कहै—नाथ ! कहा तुमने चित धारी ।
तंदुल खाय मुठी दुई, दीन, कियो तुमने दुइ लोक-विहारी ॥
खाय मुठी तिसरी अव नाथ ! कहाँ निज वास की आस विसारी ।
रंकहि आप समान कियो तुम, चाहत आपहि होन भिखारी ॥ १८ ॥

देनो हुतो सो दै चुके, विप्र न जानी गाथ ।
मन में गुनो गुपाल जू, कछू न दीनो हाथ ॥ १९ ॥

वह पुलकनि, वह उठि मिलनि, वह आदर की वात ।
वह पठवनि गोपाल की, कछू न जानी जात ॥ २० ॥

घर-घर कर ओड़त फिरे, तनक दही के काज ।
कहा भयो जो अव भयो, हरि को राज-समाज ॥ २१ ॥

हौं आवत नाहीं हुतौ, वाही पठयो ठेलि ।
अव कहिहौं समुझाय कै, वहु धन धरौ सकेलि ॥ २२ ॥

वैसोई राज समाज वनो, गज, वाजि घने मन सम्भ्रम लायो ।
कैधों पर्‌यो कहुँ मारग भूलि, कि फेरि कै मैं अव द्वारका आयो ॥
भौन विलोकिबे को मन लोचत, सोचत ही सव गाँव मझायो ।
पूँछत पाड़े फिरे सव सों पर, झोपरी को कहुँ खोज न पायो ॥ २३ ॥

टूटी-सी मड़ैया मेरी परी हुती याही ठौर,
तामे परी दुःख काटे कहाँ हेम धाम री ।
जेवर जराऊ तुम साजे सब अंग अंग,
सखी सोहै संग वह छूछी हुती छामरी ॥
तुम तौ पटम्बर री ! ओढ़ै हो किनारी दार,
सारी जरतारी, वह ओढ़े कारी कामरी ।
मेरी वा पड़ाइन तिहारी अनुहार ही पै,
विपदा सताई वह पायी कहा पामरी ॥ २४ ॥

कै वह टूटी-सी छानी हती, कहँ कंचन के अब धाम सुहावत
कै पग में पनही न हती, कहँ लै गजराजहु ठाढ़े महावत ॥
भूमि कठोर पै रात कटै, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत ।
कै जुरतो नहिं कोदो सवाँ, प्रभु के परताप ते दाख न भावत ॥ २५ ॥

['सुदामाचरित' से]

प्रश्न

१–सुदामा कौन थे ? उनकी पत्नी ने उनसे श्रीकृष्ण के पास जाने का आग्रह क्यों किया ?

२–अंतिम कठिनाई को सुदामा की पत्नी ने किस प्रकार हल किया ?

३–द्वारका पहुँचने पर सुदामा की आँखों में चकाचौंध क्यों होने लगी ?

४–श्री कृष्ण सुदामा से किस प्रकार मिले ?

५–श्री कृष्ण ने सुदामा से क्या परिहास किया ? और क्यों ?

६–विदा करते समय श्री कृष्ण ने सुदामा को क्या दिया तथा इसका सुदामा पर क्या प्रभाव पड़ा ?

७–सुदामा को न देकर उनकी पत्नी को सीधे ही वैभव सम्पन्न करने का क्या औचित्य था ?

अभ्यास

१–सुदामा की दरिद्रता के चित्रण में कवि ने कुछ बातों का उल्लेख किया है जैसे वस्त्रों का अभाव, बर्तनों की कमी । पाठ में से दरिद्रता की आठ बातें और छाँट

कर लिखिए ।

२–सुदामा ने श्री कृष्ण के पास न जाने के लिए निम्नांकित तर्क दिए—

(१) बाँभन का धन केवल भिच्छा है।

(२) जितना भाग्य में होता है उतना ही मिलता है।

(३) विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए ।

(४) कन माँगत बाह्मनै लाज नहीं ।

(५) श्री कृष्णजी के पास तक मेरा पहुँचना कठिन है।

(६) भेंट को चारि न चाँवर मेरे।

(७) जीवन शेष अहै दिन केतिक, होहुँ हरी सो कनावड़ों जाय कै ।

उनकी स्त्री ने इन तर्कों के जो उत्तर दिये हैं, उन्हें स्पष्ट करके लिखिए ।

३–सुदामा की स्त्री ने यह भी बताया कि माँगने के लिए श्री कृष्ण के पास जाना सर्वथा उचित है। इस सम्बन्ध में श्री कृष्ण के कौन-कौन से गुण सुदामा की पत्नी ने बतलाये हैं ।

४–द्वारपाल ने श्री कृष्ण से सुदामा का जो वर्णन किया उसको अपने शब्दों में लिखिए ।

५–निम्नलिखित पंक्तियों का काव्य-सौंदर्य स्पष्ट कीजिए—

(१) द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ।

(२) जातहिं देहै लदाय लढ़ा भरि ।

(३) एक दीनबंधु, कृपासिन्धु, फेरि गुरुबंधु ।

(४) पानि परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोए ।

(५) प्रभु के परताप ते दाख न भावत ।

———

रहीम

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। इनका जन्म सन् १५५६ ई० के लगभग लाहौर नगर (अब पाकिस्तान में) में हुआ था। ये अकबर के संरक्षक बैरमखाँ के पुत्र थे। रहीम अकबर के दरबार के नवरत्नों में से थे। ये अकबर के प्रधान सेनापति और मंत्री भी थे। ये वीर योद्धा थे और बड़े कौशल से सेना का संचालन करते थे। इनकी दानशीलता की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। सन् १६२७ ई० में इनकी मृत्यु हो गयी।

अरबी, तुर्की, फारसी तथा संस्कृत के ये पंडित थे। हिन्दी काव्य के ये मर्मज्ञ थे और हिन्दी कवियों का बड़ा सम्मान करते थे। गोस्वामी तुलसीदास से भी इनका परिचय तथा स्नेह-सम्बन्ध था।

रहीम-सतसई, शृंगार सतसई, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी, रहीम रत्नावली तथा बरवै नायिका भेद वर्णन इनकी रचनाएँ हैं। इन्होंने फारसी भाषा में भी ग्रंथों की रचना की है। इनकी रचनाओं का पूर्ण संग्रह रहीम रत्नावली के नाम से प्रकाशित हुआ है।

रहीम बड़े लोकप्रिय कवि थे। इनके नीति के दोहे तो सर्व साधारण की जिह्वा पर रहते हैं। इनके दोहों में कोरी नीति की नीरसता नहीं है। उनमें मार्मिकता तथा कवि-हृदय की सच्ची संवेदना भी मिलती है। दैनिक जीवन की अनुभूतियों पर आधारित दृष्टान्तों के माध्यम से इनका कथन सीधे हृदय पर चोट करता है। इनकी रचना में नीति के अतिरिक्त भक्ति तथा शृंगार की भी सुन्दर व्यंजना हुई है।

रहीम जन-साधारण में अपने दोहों के लिए प्रसिद्ध हैं, पर इन्होंने कवित्त, सवैया, सोरठा तथा बरवै छंदों में भी सफल काव्य-रचना की है। रहीम का ब्रज और अवधी भाषाओं पर समान अधिकार था। इनकी भाषा सरल, स्पष्ट तथा प्रभावपूर्ण है।

दोहा

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ॥१॥

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून ।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥२॥

टूटै सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार ।
रहिमन फिरि-फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार ॥३॥

रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥४॥

कहि रहीम संपति सगे, वनत वहुत वहु रीति ।
विपति-कसौटी जे कसे, तेही साँचे मीत ॥५॥

जाल परे जल जात वहि, तजि मीनन को मोह ।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह ॥६॥

रहिमन निज मन की व्यथा, मनही राखौ गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय ॥७॥

प्रीतम छबि नैननि बसी, पर छवि कहाँ समाय ।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आपु फिरि जाय ॥८॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोरेउ चटकाय ।
टूटे से फिरि ना जुरै, जुरै गाँठ परि जाय ॥९॥

मथत-मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥१०॥

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय ॥११॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाँति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥१२॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
जनम बृथा भूपर धरेउ, पसु विनु पूंछ विषान ॥१३॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहिं सुजान ॥१४॥

नाद रीझ तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥१५॥

रहिमन देखि वड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि ॥१६॥

यो रहीम सुख होत है, वढ़त देख निज गोत।
ज्योंवड़रीअँखियाँनिरखि, आँखिन को सुख होत ॥१७॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिँ।
उनतैं पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥१८॥

रहिमन ओछे नरन ते, तजौ बैर अरु प्रीति।
काटे-चाटे स्वान के, दुँहूँ भाँति विपरीति ॥१९॥

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कपटु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥२०॥

सोरठा

रहिमन पुतरी स्याम, मनहु जलज मधुकर लसै।
कधों सालिग्राम, रूपे के अरघा धरे ॥१॥

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान विनं ।
जो विष देत बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो ॥२॥

बरवै

पुनि पुनि वन्दहुँ गुरु के, पद जलजात ।
जिहि प्रताप तैं मन के, तिमिर विलात ॥१॥

उमड़ि-उमड़ि घन घुमड़े, दिसि बिदिसान ।
सावन दिन मन-भावन, करत पयान ॥२॥

अति अद्भुत छबि-सागर, मोहन-गात ।
देखत ही सखि बूड़त, दृग जलजात ॥३॥

ज्यों चौरासी लखि में, मानुष देह ।
त्यों ही दुर्लभ जग में, सहज सनेह ॥४॥

जदपि भई जल पूरित, छितव सुआस ।
स्वापि बूँद विन चातक, मरत पिआस ॥५॥

['रहीम-रत्नावली' से]

प्रश्न

१—रहीम किस प्रकार की प्रीति की सराहना करने को कहते हैं ?
२—हमारे नेत्रों से आँसू निकलकर क्या करते हैं ?
३—रहीम ने झूठे तथा सच्चे मित्र की क्या पहचान बतायी है ?
४—जल के प्रति मछली के प्रेम की क्या विशेषता है ?

५–अपने मन की व्यथा को प्रकट कर देने का क्या परिणाम होता है ?

६–सज्जन से प्रेम-सम्बन्ध के एक बार टूट जाने पर क्या करना चाहिए ?

७–रहीम किन व्यक्तियों के जन्म को व्यर्थ समझते हैं ? ऐसे व्यक्तियों को उन्होंने बिना सींग-पूँछ वाला पशु क्यों कहा है।

८–रहीम को किस प्रकार के अमृत को पीना अच्छा नहीं लगता ?

९–रहीम बार-बार गुरु के चरण-कमल की वन्दना क्यों करते हैं ?

१०–संसार में स्वार्थ रहित प्रेम प्राप्त करना किस प्रकार दुर्लभ है ?

११–चातक और स्वाति बूंद के सम्बन्ध में क्या कवि-प्रसिद्धि है ?

अभ्यास

१–नीचे कुछ कथन दिये गये हैं। रहीम ने उनमें से कुछ को स्वीकार किया है और कुछ को स्वीकार नहीं किया। दोनों की अलग-अलग सूचियाँ बनाइए—

(१) प्रेम-सम्बन्ध को कभी तोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि एक बार टूट जाने पर वह फिर नहीं जुड़ता।

(२) सच्चा मित्र विपत्ति पड़ने पर सदैव सहायता करने के लिए तैयार रहता है।

(३) मनुष्य अपने गोत्र के लोगों को उन्नति करता देख प्रसन्न नहीं होता।

(४) भीख माँगने वाले व्यक्ति मृतक के समान होते हैं।

(५) बिना आदर से प्राप्त अमृत का पान करके संतुष्ट हो जाना चाहिए।

(६) गुरु की कृपा से, हमारे हृदय में छाया हुआ अज्ञान का अन्धकार, नष्ट हो जाता है।

२–अति अद्‌भुत छवि-सागर, मोहन गात।
देखत ही सखि बूड़त, दृग जलजात।
उपर्युक्त छंद का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

३–रहीम की रचना से दो दोहे ऐसे छाँट कर लिखिए जिनमें रहीम ने यह कहा है कि सच्चा मित्र वही है जो विपत्ति के समय सहायता करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहता है।

४—नीचे वनी तालिका के स्तम्भ 'क' में रहीम द्वारा प्रस्तुत कुछ तथ्य दिये गये हैं और स्तम्भ 'ग' में उन तथ्यों की पुष्टि में कुछ दृष्टान्त विना क्रम के दिये हुए हैं। स्तम्भ 'ख' में प्रत्येक तथ्य को पुष्ट करने वाला दृष्टान्त उसके सामने लिखिए जैसा कि क्रमांक १ में उदाहरण के रूप में लिख दिया गया है।

क्रमांक	स्तम्भ 'क'	स्तम्भ 'ख'	स्तम्भ 'ग'
	१—कुसंग का सज्जनों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।	चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग	० काटे-चाटे स्वान के, दुँहूँ भाँति विपरीति।
	२—सज्जन यदि रूठ जाय तो उसे मना लेना चाहिए।		० कदली, सीप, भुजंग-मुख स्वाँति एक गुन तीन
	३—व्यक्ति जिस प्रकार के लोगों के साथ रहता है उस पर वैसा ही प्रभाव पड़ता है।		० चन्दन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग।
	४—धन का संचय सज्जन दूसरे के हित के लिए करते हैं।		० जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तलवारि।
	५—विशेष अवसर पर जो काम छोटे लोगों से निकलता है उसे बड़े लोग नहीं कर पाते		० ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ० तरुवर फल नहीं खात हैं सरवर पियहि न पान
	६—ओछे लोगों से प्रेम रखना चहिए न शत्रुता।		० रहिमन फिरि-फिरि पोइए टूटे मुक्ताहार।

रसखान

रसखान सगुण काव्य-धारा की कृष्ण-भक्ति शाखा के कवि थे। इनका नाम सैयद इब्राहीम था। ये दिल्ली के पठान सरदार थे। इनका जन्म सन् १५५८ ई० के लगभग हुआ था। ये गुसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य हो गये थे। सन् १६१८ ई० के लगभग इनकी मृत्यु हुई।

रसखान रीतिकालीन कवि हैं परन्तु इनकी रचना कृष्ण-भक्ति काव्यधारा की परंपरा में है। रसखान आरम्भ से ही वड़े प्रेमी व्यक्ति थे। इनका लौकिक प्रेम भगवान कृष्ण के प्रति अलौकिक प्रेम-भाव में परिवर्तित हो गया था। ये जितना कृष्ण के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध थे उतना ही उनकी लीला-भूमि व्रज के प्राकृतिक सौन्दर्य पर भी। कृष्ण के प्रति इनके प्रेम-भाव में वड़ी तीव्रता, गहनता और आवेशपूर्ण तन्मयता मिलती है। इसी कारण इनकी रचनाएँ हृदय पर मार्मिक प्रभाव डालती हैं। अपनी भाव सवलता तथा सरलता के कारण ये रचनाएँ वड़ी लोकप्रिय हो गयी हैं। इनकी लिखी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं, 'सुजान रसखान' और 'प्रेमवाटिका'।

'सुजान रसखान' की रचना कवित्त और सवैया छंदों में हुई है तथा 'प्रेमवाटिका' की दोहा छन्द में। अन्य कृष्णभक्त कवियों की भाँति इन्होंने परम्परागत पद शैली का अनुसरण नहीं किया। इनकी मुक्तक छंद शैली की परम्परा रीतिकाल तक चलती रही।

रसखान ने व्रज भाषा में काव्य रचना की। इनकी भाषा मधुर एवं सरस है। उसका स्वाभाविक प्रवाह ही इनके काव्य को आकर्षक वना देता है। इन्होंने कहीं-कहीं पर यमक तथा अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है जिससे भाषा-सौन्दर्य के साथ भाव-सौन्दर्य की भी वृद्धि हुई है।

सवैये

मानुष हौं तौ वही रसखानि, वसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तो कहा वस मेरो, चरौं नित नंद की धेनु मँझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यौ कर छत्र पुरंदर-धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, मिलि कालिंदी-कूल कदंव की डारन ॥ १ ॥

आजु गई हुती भोर ही हौं, रसखानि रई वहि नंद के भौनहिं ।
वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहिं ॥
तेल लगाइ लगाइ कै अँजन, भौहैं वनाइ वनाइ डिठौनहिं ।
डारि हमेलनि हार निहारत वारत ज्यौ चुचकारत छौनहिं ॥ २ ॥

धूरि भरे अति सोभित स्यामजू, तैसी वनी सिर सुंदर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैजनी वाजति पीरी कछोटी ॥
वा छवि कों रसखानि विलोकत, वारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग वड़े सजनी हरि-हाथ सों लै गयौ माखन-रोटी ॥ ३ ॥

आयौ हुतौ नियरै रसखानि, कहा कहौं तू न गई वहि ठैया ।
या ब्रज मैं सिगरी वनिता, सव वारतिं प्राननि लेतिं वलैया ॥
कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक सो जु कियौ जदुरैया ।
गाइ गौ तान जमाइ गौ नेह रिझाइ गौ प्रान चराइ गौ गैया ॥ ४ ॥

जा दिन तें वह नंद को छोहरा, या वन धेनु चराइ गयौ है ।
मोहिनी ताननि गोधन गावत, बेनु वजाइ रिझाइ गयौ है ॥
वा दिन सो कछु टोना सो कै, रसखानि हियै मैं समाइ गयौ है ।
कोऊ न काहू की कानि करै, सिगरो ब्रज वीर, विकाइ गयौ है ॥ ५ ॥

कानिन दै अँगुरी रहिवो, जवहीं मुरली धुनि मंद वजैहै ।
मोहिनी ताननि सों रसखानि, अटा चढ़ि गोधन गैहै तौ गैहै ॥

टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि, काल्हि कोऊ कितनौ समुझैहै ।
माइ री ! वा मुख की मुसकानि, सम्हारी न जैहै, न जैहै, न जैहै ॥ ६ ॥

कान्ह भए वस बाँसुरी के, अब कौन सखी, हमकों चहिहै ।
निसद्यौस रहै सँग-साथ लगी, यह सौतिन तापन क्यौं सहिहै ॥
जिन मोहि लियौ मनमोहन कौं, रसखानि सदा हमकौं दहिहै ।
मिलि आऔ सबै सखी, भागि चलैं अब तो ब्रज में बँसुरी रहिहै ॥ ७ ॥

कल काननि कुंडल मोरपखा, उर पै बनमाला विराजति है ।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि-तरंग, महाछवि छाजति है ।
रसखानि लखें तन पीत पटा, सत दामिनि की दुति लाजति है ।
वहि बाँसुरी की धुन कान परें, कुलकानि हियो तजि भाजति है ॥ ८ ॥

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरें पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी, वन गोधन ग्वारन संग फिरौंगी ॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि, सो तेरे कहें सब स्वाँग करौंगी ।
या मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी ॥ ९ ॥

कवित्त

गोरज विराजै भाल लहलही बनमाल
आगे गैयाँ पाछें ग्वाल गावै मृदु बानि री ।
तैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर, जैसी
बंक चितवनि मंद मंद मुसकानि री ।

कदम बिटप के निकट तटिनी के तट
अटा चढ़ि चाहि पीत पट फहरानि री ।
रस बरसावै तन-तपनि बुझावै नैन
प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री ॥ १० ॥

कहा रसखानि सुख संपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाए अंग छार को।
कहा साधे पंचानल, कहा साए वीच नल,
कहा जोति लाए राज सिंधु-आरपार को।
जप वार-वार, तप संजम वयार-व्रत,
तीरथ हजार अरे वूझत लवार को।
कोन्हौ नहीं प्यार, नहीं सेयौ दरवार, चित-
चाह्यौ न निहार्‌यौ जौ पै नन्द के कुमार को ॥११॥

[रसखानि-ग्रन्थावली से]

प्रश्न

१—रसखान ऐसी कामना क्यों करते हैं कि यदि भगवान उनको पक्षी वनायें तो ऐसा पक्षी वनायें जो यमुना के किनारे कदम्व की डाल पर बसेरा करता हो ?

२—यशोदा के किस सुख का वर्णन गोपी नहीं कर सकती ?

३—कृष्ण के हाथ से रोटी छीन कर उड़ जाने वाला कौआ कवि को भाग्यशाली क्यों लगा ?

४—श्री कृष्ण ने व्रज के निवासियों के ऊपर जादू किस प्रकार कर दिया ?

५—जव से श्री कृष्ण वन में गाय चराने गये, तव से वहाँ के लोगों की क्या दशा हो गयी ?

६—मुरली और गोधन के संगीत के प्रभाव से बचने का गोपी ने क्या उपाय निकाला ? मुसकान के सम्बन्ध में वह क्या कहती है ?

७—गोपियाँ कृष्ण की मुरली को अपनी सौत क्यों समझती हैं ?

८—गोपियाँ व्रज से क्यों भाग जाना चाहती हैं ?

९—गोपी अपनी सखी के कहने पर कौन-कौन से स्वाँग करने को तैयार है ? वह कौन-सा कार्य करने को मना करती है ?

अभ्यास

१—कृष्ण के प्रेम के कारण गोपियाँ अपने कुल की मर्यादा का पालन नहीं कर पा रही थीं। रसखान की रचनाओं से वे पंक्तियाँ छाँटकर लिखिए जिनमें

गोपियों ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की है।

२–"गोरज बिराजै भाल, लहलहीं बनमाल,...............प्राननि रिझावै वह आवै रसखानि री।"

इस छन्द में कौन-सा रस है और उसका स्थायी भाव क्या है? निम्नलिखित तालिका में लिखिए कि उपर्युक्त छंद में विभाव, अनुभाव तथा संचारी आदि क्या हैं?

रस के अंग	रचना की पंक्ति या पंक्ति का अंश
विभाव { आलम्बन, उद्दीपन आश्रय अनुभाव संचारी भाव	

३–"आजु गई हुती भोर ही हौं, रसखानि रई वहि नंद के भौनहिं।"

ऊपर दी गयी छंद की पंक्ति की लय कान को बड़ी मधुर प्रतीत होती है। इस छंद में एक गुरु ध्वनि के बाद दो लघु ध्वनियाँ आती हैं। ध्वनियों का यह क्रम छंद को लय प्रदान करता है। इसी प्रकार किसी-किसी छंद में आरम्भ में दो लघु और एक गुरु का क्रम होता है। इस प्रकार के छंदों को सवैया छंद कहते हैं। रसखान के किसी ऐसे छन्द की एक पंक्ति लिखिए जो उपर्युक्त छंद से भिन्न लय वाली हो। उस छंद का नाम भी लिखिए।

४–रसखान की रचना से छाँट कर वे पंक्तियाँ लिखिए जिनमें निम्न भाव व्यक्त किये गये हैं—

(क) कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देखकर कामदेव अपनी करोड़ों बलाएँ उन पर न्योछावर कर देता है।

(ख) हे सखी! अब कोई किसी के साथ मर्यादा का पालन नहीं करता। ब्रज की सारी गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में बिक गयी हैं।

(ग) श्रीकृष्ण के द्वारा ओठों पर रखी गयी मुरली को मैं अब अपने ओठों पर नहीं रखूँगी।

(घ) रस की वर्षा करता हुआ, हमारे वियोग की अग्नि को शान्त करता हुआ तथा हमारे नेत्रों और प्राणों को रिझाता हुआ कृष्ण आ रहा है।

———

बिहारीलाल

बिहारी का जन्म सन् १६०३ ई० के लगभग ग्वालियर के पास बसुआ गोविन्दपुर गाँव में हुआ था। ये मथुरा के चौबे थे। इनका बचपन बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुआ। युवावस्था में ये अपनी ससुराल मथुरा में जाकर रहने लगे। जयपुर के मिर्जा राजा जयसिंह के आप आश्रित कवि थे। जयपुर में रहकर ही इन्होंने अपने एक मात्र ग्रंथ सतसई की रचना की। राजा जयसिंह बिहारी का बड़ा सम्मान करते थे। कहा जाता है कि वे इनको प्रत्येक दोहे पर एक स्वर्ण-मुद्रा पुरस्कार रूप में देते थे। इनकी मृत्यु सन् १६६३ ई० में हुई थी।

बिहारी ने किसी लक्षण-ग्रन्थ की रचना नहीं की, फ़िर भी काव्य-रचना करते समय इनका ध्यान काव्यांगों पर रहा। सतसई के अनेक दोहे रसों और अलंकारों के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ये रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। भक्ति, नीति तथा ऋतु-वर्णन भी इनके काव्य के विषय रहे पर प्रधानता प्रेम और शृंगार की है।

बिहारी सतसई मुक्तक काव्य रचना है जिनमें मुक्तक काव्य की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। बिहारी ने दोहा जैसे छोटे छन्द का प्रयोग कर विस्तृत अर्थ की सफल अभिव्यंजना की है। किसी-किसी दोहे में अभीष्ट अर्थ ग्रहण करने के लिए काव्य-परम्परा की समूची पृष्ठभूमि के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

बिहारी ने साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। भाषा में शब्द-योजना तथा वाक्य-रचना बड़ी व्यवस्थित है।

केवल एक छोटे से ग्रंथ की रचना करके बिहारी साहित्य-जगत में अमर हो गये। इनकी सतसई बड़ी लोकप्रिय हुई। इसकी अनेक टीकाएँ लिखी गयीं। कई कवियों ने इनके दोहों पर आधारित अन्य छन्दों की रचना की है।

भक्ति

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झांईं परैं स्यामु हरित-दुति होइ ॥ १ ॥

मोर-मुकुट की चंद्रिकनु यौं राजत नँदनंद ।
मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सत चंद ॥ २ ॥

सोहत ओढ़ैं पीतु पटु, स्याम सलौनैं गात ।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतपु पर्‌यौ प्रभात ॥ ३ ॥

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ-डीठि-पट-जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष-रँग होति ॥ ४ ॥

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न ।
हरिनी के नैनानु तैं, हरि, नीके ए नैन ॥ ५ ॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ ।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥ ६ ॥

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं वाट ।
विकट जटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट-कपाट ॥ ७ ॥

यह बिरिया नहिं और की, तूँ करिया वह सोधि ।
पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि ॥ ८ ॥

दीरघ साँस न लेहिं दुख, सुख साईं हिं न भूलि ।
दई-दई क्यौं करतु है, दई-दई सु कबूलि ॥ ९ ॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहि ।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि ॥ १० ॥

सीस-मुकुट, कटि-काछनि, कर-मुरली, उर-माल ।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल ॥ ११ ॥

जप, माला, छापा, तिलक, सरै न एकौ कामु ।
मन-काँचै नाचे वृथा, साँचे राँचै रामु ॥ १२ ॥

मैं समझ्यौ निरधार, यह जगु काँचो काँच सौ ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिंबित लखियतु जहाँ ॥ १३ ॥

प्रकृति

अरुन सरोरुह-कर-चरन, दृग-खंजन, मुख-चंद ।
समै आइ सुंदरि सरद, काहि न करति अनंद ॥ १४ ॥

कहलाने एकत वसत, अहि मयूर, मृग, वाघ ।
जगतु तपोवन सौ कियौ, दीरघ दाघ निदाघ ॥ १५ ॥

बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन-तन माँह ।
देखि दुपहरी जेठ की, छाँहौं चाहति छाँह ॥ १६ ॥

पावस-घन-अँधियार महि, रह्यौ भेदु नहिं आनु ।
रात द्यौस जान्यौ परतु, लखि चकई चकवानु ॥ १७ ॥

नीति

चटक न छाँड़तु घटत हूँ सज्जन-नेहु गँभीरु ।
फीकौ परै न, वरु फटै, रँग्यौ चोल-रँग चीरु ॥ १८ ॥

दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौं न वढ़ै दुख-दंदु ।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रवि-चंदु ॥ १९ ॥

वसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु ।
भलौ-भलौ कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जपु, दानु ॥ २० ॥

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति कैं धंध ।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध ॥ २१ ॥

नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतौ नीचो ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥ २२ ॥

चढ़त-वढ़त संपति-सलिलु, मन-सरोजु वढ़ि जाइ ।
घटत-घटत सु न फिरि घटै, वरु समूल कुम्हिलाइ ।। २३ ।।

जौ चाहत, चटक न घटै, मैलौ होइ न, मित्त ।
रज्ज राजसु न छुवाइ तौ, नेह-चीकने चित्त ।। २४ ।।

बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चितु खरो डरातु ।
ज्यों निकलंकु मयंकु लखि गनैं लोग उतपातु ।। २५ ।।

कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग ।
तीन दवावत निसकहीं पातक, राजा, रोग ।। २६ ।।

मीत, न नीति गलीतु ह्वै जो धरियैं धनु जोरि ।
खाएें खरचैं जौ जुर, तौ जौरिये करोरि ।। २७ ।।

वे न इहाँ नागर, वढ़ी, जिन आदर तो आव ।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयो, गँवई-गाँव, गुलाव ।। २८ ।।

कर लै, सँघि सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौनु ।
गंधी अंध, गुलाव कौ, गँवई गाहकु कौनु ।। २९ ।।

स्वारथु, सुकृतु, न श्रमु वृथा, देखि, विहंग विचारि ।
गाज, पराएें पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ।। ३० ।।

['बिहारी-सतसई' से]

प्रश्न

१—श्री कृष्ण की हरे वाँस की वाँसुरी इन्द्रधनुष के रंगों वाली क्यों हो जाती है ?

२—"श्याम रंग में डूवने से चित्त उज्जवल हो जाता है ।" विरोधाभास को स्पष्ट कीजिए ।

३—'श्याम रंग' का किन दो अर्थों में प्रयोग किया गया है ? यहाँ कौन-सा अलंकार है ?

४—विहारी किस कर्णधार को स्मरण करने के लिए कह रहे हैं ?

५—विहारी श्री कृष्ण के किस रूप को हृदय में बसाना चाहते हैं ?

६—विहारी यह क्यों कहते हैं कि ग्रीष्म ऋतु में सारा संसार तपोवन बन जाता है ?

७–कवि-परम्परा में चक्रवात के सम्बन्ध में क्या धारणा प्रचलित है ?

८–किसी राज्य की प्रजा का दुःख कब बढ़ जाता है ? बिहारी ने अपने कथन की पुष्टि में जो दृष्टान्त दिया है, उसको स्पष्ट कीजिए ।

९–बिहारी ने मनुष्य की और पानी के नल की दशा को समान क्यों कहा है ?

१०–'बुरा व्यक्ति जब बुराई छोड़ देता है तब हम शंकित हो जाते हैं'–इस भाव की पुष्टि में कवि ने क्या दृष्टान्त दिया है ?

अभ्यास

१–नीचे बिहारी के दो छंद दिये गये हैं, इनमें से एक की लय दूसरे से भिन्न है। इन दोनों छदों में मात्राएँ गिनिए और उनकी संख्या को चरण के सामने लिखिए ।

(क) मेरी भव-बाधा हरौ, ( )
राधा नागारि सोइ । ( )
जा तन की झांईं परैं, ( )
स्यामु हरित-दुति होइ । ( )

(ख) मैं समझ्यौ निरधार, ( )
यह जगु कांचो कांच सौ । ( )
एकै रूप अपार, ( )
प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ ॥ ( )

दोनों छंदों की तुलना करके बताइए कि दोनों में क्या अन्तर है ? दूसरे छंद को परिवर्तित करके इस प्रकार लिखिए कि उसकी लय भी पहले छंद के समान हो जाय। दोनों छंदों के नाम लिख कर उनके सामने उनके लक्षण भी लिखिए ।

१–निम्नलिखित दोहों के सामने उन दोहों में आये हुए अलंकारों के नाम लिखिए । यदि किसी दोहे में एक से अधिक अलंकार हैं, तो सभी अलंकारों के नाम लिखिए—

(क) सोहत औढ़ैं पीतु पटु, श्याम सलौनैं गात ।
मनौ नीलमनि-सैल पर, आपतु पर्‌यौ प्रभात ॥

(ख) बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न ।
हरिनी के नैनानु तैं, हरि, नीके ये नैन ॥

(ग) तौ लगु या मन-सदन मैं, हरि आवैं किहिं बाट ।
विकट जटे जौ लगु निपट खुटैं न कपट कपाट ॥

(घ) अरुन सरोरुह-कर-चरन, दृग-खंजन, मुख-चन्द ।
समै आइ सुन्दरि सरद, काहि न करत अनन्द ॥

(च) जौ-चाहत, चटक न घटै, मैलौ होय न, मित्त ।
रज राजसु न छुवाइ तौ नेह चीकने चित्त ॥

३–कभी-कभी केवल अप्रस्तुत का वर्णन करते हैं और उसी के द्वारा प्रस्तुत की ओर संकेत मात्र कर देते हैं। इस प्रकार के चमत्कार को 'अन्योक्ति' अलंकार कहते हैं। विहारी के निम्नलिखित दोहो में अन्योक्ति अलंकार है। दोहों के नीचे वनी तालिका में अप्रस्तुत के सामने प्रस्तुत लिखिए—

(क) वे न इहाँ नागर, बढ़ी, जिन आदर तो आब ।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयो, गँवईं गाँव गुलाब ॥

(ख) कर लै सूँघि सराहि हूँ, रहे सबै गहि मौनु ।
गंधी अंध, गुलाब कौ, गँवईं गाहकु कौनु ॥

(ग) स्वारथु सुकृतु न स्रमु बृथा, देखि बिहंग बिचारि ।
बाजि पराऐं पानि परि, तूं पच्छीनु न मारि ॥

दोहे के क्रमांक	अप्रस्तुत	प्रस्तुत
(क)	गुलाव	
(ख)	गंधी अंध	
(ग)	गुलाव	
(घ)	वाज	
(ङ)	पच्छीनु	

४–विहारी ने अपनी रचना के लिए बहुत छोटा-सा छंद चुना है और उस छोटे से छंद में ही उन्होंने विस्तृत भावों का समावेश वड़ी सफलता से किया है। इस कारण कहा जाता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर' भर दिया है। विहारी की रचना के पाँच दोहे ऐसे छाँटिए जो उपर्युक्त कथन को चरितार्थ करें और उनकी व्याख्या करके उक्त कथन की पुष्टि कीजिए।

५–बिहारी का एक दोहा ऐसा लिखिए जिसमें विरोधी बातों का साथ-साथ वर्णन करके चमत्कार उत्पन्न किया गया है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु वाबू हरिश्चन्द्र का जन्म सन् १८५० ई० में काशी के एक सम्भ्रान्त वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता वाबू गोपाल चन्द्रजी 'गिरधर दास' उपनाम से ब्रज-भाषा में कविता करते थे। भारतेन्दुजी ने पाँच वर्ष की अवस्था में ही एक दोहा रचकर अपने पिता से सुकवि होने का आशीर्वाद पाया था। दुर्भाग्य से इनकी स्कूली शिक्षा भली प्रकार न हो सकी। स्वाध्याय से इन्होंने हिन्दी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। सन् १८८५ ई० में ही इनका निधन हो गया।

भारतेन्दु प्रतिभावान थे। निवन्ध, नाटक, उपन्यास, आलोचना, पत्रकारिता कविता आदि सभी क्षेत्रों में इन्होंने युगान्तर उपस्थित किया। यही कारण है कि उस काल का नामकरण 'भारतेन्दु युग' हुआ।

भारतेन्दुजी को आधुनिक काल में हिन्दी का प्रथम राष्ट्रकवि निस्संकोच कहा जा सकता है क्योंकि सर्व प्रथम इनके साहित्य में ही राष्ट्रीयता, समाज-सुधार, राष्ट्र-भक्ति और देश-प्रेम के व्यापक रूप में दर्शन होते हैं। इन्होंने भक्ति एवं रीति-कालीन कवियों की भाँति भक्ति और शृंगार की सरस एवं मार्मिक कविताएँ भी लिखी हैं। इनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ—प्रेम-माधुरी, प्रबोधिनी, प्रेम सरोवर, प्रेम फुलवारी, सतसई-शृंगार, भक्तमाल, विनय प्रेम पचासा आदि हैं। भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १, २ तथा ३ में इनका सम्पूर्ण साहित्य संगृहीत है।

भारतेन्दु खड़ी बोली गद्य के जनक माने जाते हैं। इन्होंने कविता व्रजभाषा में ही की। व्रजभाषा का रूढ़िमुक्ति रूप भारतेन्दु ने अपनाया। लोकोक्तियों और मुहा-वरों का भी प्रयोग इन्होंने अनोखे ढंग से किया है। इन्होंने कवित्त, कुण्डलिया, सवैया, छप्पय, दोहा आदि छंदों को अपनाया है।

निश्चय ही हिन्दी साहित्य में भारतेन्दुजी का योगदान चिरस्मरणीय और प्रेरणादायक रहेगा।

प्रेम-माधुरी

कूकै लगीं कोइलैं कदंवन पै बैठि फेरि
धोए-धोए पात हिलि-हिलि सरसै लगे ।
वोलै लगे दादुर मयूर लगे नाचै फेरि
देखि के सँजोगी जन हिय हरसै लगे ॥
हरी भई भूमि सीरी पवन चलन लागी
लखि 'हरिचंद' फेरि प्रान तरसै लगे ।
फेरि झूमि-झूमि वरषा की रितु आई फेरि
वादर निगोरे झुकि-झुकि बरसै लगे ॥१॥
जिय पै जु होइ अधिकार तो विचार कीजै
लोक-लाज, भलो-बुरो, भले निरधारिए ।
नैन श्रौन, कर, पग, सबे पर-वस भए
उतै चलि जात इन्हैं कैसे कै सम्हारिए ।
"हरिचंद' भई सव भाँति सों पराई हम
इन्हें ज्ञान कहि कहो कैसे कै निबारिए ।
मन में रहै जो ताहि दीजिए बिसारि, मन
आपै वसै जामैं ताहि कैसे कै बिसारिए ॥२॥
यह संग में लागियै डोलैं सदा, बिन देखे न धीरज आनती हैं ।
छिनहू जो वियोग परै 'हरिचंद', तो चाल प्रलै की सु ठानती हैं ।
बरुनी में थिरैं न झपैं उझपैं, पल मैं न समाइबो जानती हैं ।
पिय प्यारे तिहारे निहारे विना, अँखियाँ, दुखियाँ नहिं मानती हैं ॥३॥
पहिले वहु भाँति भरोसो दियो, अब ही हम लाइ मिलावती हैं ।
'हरिचंद' भरोसे रही उनके सखियाँ जे हमारी कहावती हैं ॥
अव वेई जुदा ह्वै रहीं हम सों, उलटो मिलि कै समुझावती हैं ।
पहिले तो लगाइ कै आग अरी ! जल कों अब आपुहि धावती हैं ॥४॥

ऊधौ जू सूधो वह मारग, ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ, इक स्याम की प्रीति प्रतीति खरी है।।
ये ब्रजवाला सबै इक सी, हरिचंद जू मंडली ही विगरी है।
एक जौ होय तो ज्ञान सिखाइए कूप ही में यहाँ भाँग परी है।।५।।

सखि आयो वसंत रितून को कंत, चहूँ दिसि फूलि रही सरसों।
वर सीतल मंद सुगंध समीर सतावन हार भयो गर सों।।
अव सुंदर साँवरो नंद किसोर कहै 'हरिचंद' गयो घर सों।
परसों को विताय दियो वरसों तरसों कब पाँय पिया परसों।।६।।

इन दुखियान को न चैन सपनेहूँ मिल्यो,
तासों सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी।
प्यारे हरिचंदजू की बीती जानि औधि, प्रान,
चाहत चले पै ये तो संग ना समायँगी।।
देखौ एक वारहू न नैन भरि तोहिं यातें
जौन-जौन लोक जैहैं तहाँ पछतायँगी।
बिना प्रान-प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय
मरेहू पै आँखें ये खुली ही रहि जायँगी।।७।।

मातृ-भाषा

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय कौ सूल।।१।।

इक भाषा, इक जीव इक, मति सब घर के लोग।
तबै वनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग।।२।।

और एक अति लाभ यह, यामें प्रगट लखात।
निज भाषा में कीजिए, जो विद्या की बात।।३।।

तेहि सुनि पावैं लाभ सब, बात सुनैं जो कोय ।
यह गुन भाषा और महँ, कबहूँ नाहीं होय ।।४।।

विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार ।
सब देसन से लै करहु, भाषा माँहि प्रचार ।।५।।

धर्म, जुद्ध, विद्या, कला, गीत, काव्य अरु ज्ञान ।
सबके समझन जोग है, भाषा माँहि समान ।।६।।

['भारतेन्दु ग्रन्थावली' से]

प्रश्न

१–वर्षा के वर्णन में कवि ने किन बातों का उल्लेख किया है ? वर्षा ऋतु की कुछ अन्य बातें भी बताइए जिनका कवि ने उल्लेख नहीं किया ।

२–बादल को निगोड़े क्यों कहा गया है ?

३–गोपी का अपने नेत्र, कान, हाथ और पैरों पर अपना नियन्त्रण क्यों नहीं रहा ?

४–'उतै चलि जात' में किधर जाने की ओर संकेत है ?

५–'प्रलय की चाल' से कवि का क्या तात्पर्य है ?

६–श्री कृष्ण को भूलने में गोपियाँ क्यों अपने को असमर्थ पाती हैं ?

७–'आग लगाकर पानी के लिए दौड़ने' का आशय स्पष्ट कीजिए ।

८–गोपियाँ उद्धव से ज्ञान का उपदेश वापस ले जाने के लिए क्यों कह रही हैं ?

९–'कूप ही में यहाँ भाँग परी है' से कवि का क्या तात्पर्य है ?

१०–वियोगिनी की आँखों को सदैव पश्चात्ताप क्यों रहेगा ?

अभ्यास

१–वर्षा और बसंत का वर्णन यहाँ वियोग को उद्दीप्त करने के लिए किया गया है । उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए ।

२–निम्नलिखित पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए—

(क) परसों को बिताय दियो बरसों तरसों कब पाँय पिया परसों।

(ख) पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।

(ग) बोलै लगे दादुर मयूर लगे नाचै फेरि

देखि कै सँजोगी जन हिय हरसै लगे।

३–कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देखे बिना गोपी के नेत्रों की क्या दशा हो गयी है?

४–मातृ-भाषा के सम्बन्ध में भारतेन्दुजी के विचारों को अपने शब्दों में लिखिए।

श्रीधर पाठक

श्रीधर पाठक का जन्म सन् १८५९ ई० में आगरा जिले के जौंधरी गाँव में हुआ था। सन् १९२८ ई० में इनकी मृत्यु हो गयी।

पाठकजी हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी भाषा के पंडित थे। इनकी रचनाओं को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—एक अनूदित तथा दूसरी मौलिक। वे इस प्रकार हैं :–

अनूदित रचनाएँ—

'एकान्तवासी योगी' (गोल्डस्मिथ के 'हरमिट' का अनुवाद) 'श्रान्त पथिक' (ट्रेवेलर का अनुवाद) 'ऊजड़ ग्राम' (डेजर्टेड विलेज का अनुवाद) 'ऋतुसंहार' (कालिदास के ऋतुसंहार का अनुवाद)।

मौलिक रचनाएँ—

जगत सच्चाईसार, कश्मीर सुषमा, भारतगीत, मनोविनोद (भाग १, २, ३) धनविजय, गुनवन्त, हेमन्त, वनाष्टक, देहरादून, गोखले गुणाष्टक, गोखले प्रशस्ति, गोपिका गीत तथा स्वर्गीय वीणा और तिलस्माती सुन्दरी।

पाठकजी स्वदेश-प्रेम और समाज-सुधार की भावनाओं के प्रतिनिधि कवि हैं। प्रकृति वर्णन में इनकी स्वच्छ प्रतिभा के दर्शन किये जा सकते हैं। इनकी कविता में एक ओर राष्ट्रीयता और स्वदेश-गान है तो दूसरी ओर शिक्षा-प्रसार और विधवाओं की व्यथा जैसे सामाजिक विषय हैं।

भाषा की दृष्टि से पाठकजी ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही कविता लिखते रहे हैं। सच तो यह है कि इनकी ब्रजभाषा की कविताओं में माधुर्य है, सरसता है और काव्य-सौन्दर्य भी है, किन्तु खड़ी बोली की इनकी कविताएँ ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। हिन्दी में अतुकान्त कविता लिखने का सम्भवतः सबसे पहले प्रयास पाठकजी ने ही किया था।

कश्मीर-सुषमा

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस छनकि छवि छिन-छिन धारति॥
विमल-अम्बु-सर मुकुरन महँ मुख-विम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन-मन वारति॥

सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी।
वहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तर-सारी॥
विहरति विविध-विलास-भरी जोवन के मद सनि।
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनि, ठनि॥

मधुर मंजु छवि पुंज छटा छिरकति वन कुंजन।
चितवति, रिझवति, हँसति, डसति, मुसिक्याति, हरति मन॥
यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि-धरि बहुँ भाँतिन।
सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन॥

पूरन करिबे काज कामना अपने मन की।
किंकरता करि रह्यो प्रकृति-पंकज-चरनन की॥
चहुँ दिसि हिम गिरि-सिखर, हीर-मनि मौलि अवलि मनु।
स्रवत सरित-सित-धार, द्रवत सोई चन्द्रहार जनु॥

फल फूलन छवि छटा, छाई जो बन उपवन की।
उदित भई मनु अवनि उदर-सों, निधि रतनन की॥
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छवि।
छई मंडलाकार, रही चारिहुँ दिसि यों फवि॥

मानहुँ मनिमय मौलि-माल आकृति अलबेली ।
रच्यौ विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली ॥
अर्द्ध चन्द्र सम सिखर-स्रैनि कहुँ यों छवि छाई ।
मानहुँ चन्दन-घौरि, धौरि-गृह, खौरि लगाई ॥

जुरि तिन स्रैनिन वीच वितस्ता रेख जु राजति ।
वैष्णव "श्री" अरु शिव त्रिसूल की आभा भ्राजति ॥
तिस स्रैनिन सों घिर्‌यौ अद्रिमण्डल यह रूरौ ।
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख पूरौ ॥

बहु विधि दृश्य-अदृश्य कला कौशल सों छायौ ।
रच्छन निधि नैसर्ग मनहुँ विधि दुर्ग बनायौ ॥
अथवा विमल बटोरि विश्व की निखिल निकाई ।
गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ सन्दूक बनाई ॥

कै यह जादू भरी विस्व-वाजीगर-थैली ।
खेलत में खुलि परी सैल के सिर पै फैली ॥
खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी ।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी ॥

कै यह विकसित ब्रह्म-वाटिका की कोउ क्यारी ।
जोगिराज ने यहाँ जोग बल ऐंचि उतारी ॥
कै सामग्री सहित भैरवी चक्र मँझारी ।
परिकल्पित करि धरी शक्ति पूजन की थारी ॥

किधौं चढ़ायो धाता ने भारत के मस्तक ।
मनसा मालिनि रच्यौ चारु कुसुमन कौ गुच्छक ॥
कामधेनु पै रवि-हय की खुर छाप सलौनी ।
कै बसुधा पै सुधा-धार ब्रह्मद्रव-द्रोनी ॥

['कश्मीर सुषमा' से]

प्रकृति-वर्णन

जेठ के दारुण आतप से, तप के जगती-तल जावै जला,
नभ-मंडल छाया मरुस्थल-सा दल बाँध के अंधड़ आवै चला।
जल-हीन जलाशय, व्याकुल हैं पशु-पक्षी, प्रचंड है भानुकला,
किसी कानन कुंड के धाम में प्यारे, करैं विसराम चलौ तो भला॥

काली घटा का घमंड घटा, नभ-मंडल तारका-वृन्द खिले,
उजियाली निशा, छविशाली दिशा, अति सोहैं धरातल फूले-फले।
निखरे सुथरे वन-पंथ खुले, तरु पल्लव चन्द्रकला से धुले,
वन शारदी चन्द्रिका-चादर ओढ़ें, लसैं समलंकृत कैसे भले॥

['वनाष्टक' से]

प्रश्न

१—प्रकृति-सुन्दरी किस प्रकार अपना शृंगार करती है ?

२—शृंगार का रूप धारण करके प्रकृति के चरण-कमल की सेवा सौन्दर्य क्यों करता है ?

३—अदृश्य कला कौशल से पूर्ण कश्मीर के अनेक प्राकृतिक दृश्य कैसे प्रतीत होते हैं ?

४—कश्मीर की घाटी में खिले फूलों के सौन्दर्य को देखकर कवि क्या कल्पनाएँ करता है ?

५—भैरव चक्र से कवि का क्या तात्पर्य है ?

६—ग्रीष्म ऋतु की भयानकता दिखलाने के लिए कवि ने किन पाँच बातों का वर्णन किया है ? इनकी ओर ध्यान देने से आपको ग्रीष्म ऋतु कैसी प्रतीत होने लगती है ?

७—कानन-कुंज के धाम में विश्राम करने के लिए कवि क्यों कह रहा है ?

८—काली घटा का घमंड घटा से कवि का क्या तात्पर्य है ?

९—वर्षा ऋतु की शोभा आकाश में घुमड़ने वाली काली घटाओं से है और वसंत की शोभा उस समय खिलने वाले फूलों से। इसी प्रकार शरद्-ऋतु की शोभा की मुख्य विशेषता क्या है ?

अभ्यास

१—नीचे श्रीधर पाठक की 'कश्मीर सुषमा' शीर्षक कविता के सम्बन्ध में कुछ कथन दिये हुए हैं, जिनमें कुछ सही हैं और कुछ सही नहीं हैं। सही कथनों को छाँटकर लिखिए—

(क) 'कश्मीर सुषमा' कविता में कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन उद्दीपन के लिए किया है।

(ख) 'कश्मीर सुषमा' कविता में कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन आलम्बन रूप में किया है।

(ग) इस कविता में कवि प्रकृति पर अपनी आत्म-चेतना का प्रतिबिम्ब देखता है अतः वह उसे सजीव दिखलाई पड़ती है।

(घ) इस कविता में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।

(च) कवि ने काव्य-चमत्कार उत्पन्न करने के लिए प्रकृति का वर्णन किया है।

२—उत्प्रेक्षा योजना के अन्तर्गत 'कश्मीर-सुषमा' शीर्षक कविता में कवि द्वारा प्रयोग किये गये कुछ अप्रस्तुत नीचे संकलित किये गये हैं। रचना से छाँटकर उनके प्रस्तुत लिखिए—

(क) हीरमनि मौलि-अवलि।

(ख) चन्द्रहार जनु।

(ग) उदित भई मनु अवनि उदर-सों निधि रतनन की।

(घ) मानहुँ मनिमय मौलि-माल आकृति अलबेली।

(ङ) बाँधी विधि अनमोल गोल भारत सिर सेली।

(च) मानहुँ चन्दन-धौरि धौरि-गृह धौरि लगाई।

३—'विमल-अम्बु-सर मुकुरन महँ मुख बिम्ब निहारति' में प्रयुक्त रूपक अलंकार की व्याख्या कीजिए तथा स्पष्ट कीजिए कि उपमान को उपमेय पर कैसे आरोपित किया गया है?

४—'कश्मीर सुषमा' और 'वनाष्टक' में प्रकृति का ही चित्रण किया गया है। दोनों में प्रकृति-चित्रण की शैलियाँ भिन्न हैं। नीचे प्रकृति-चित्रण की शैलियाँ दी गयी हैं। इनमें किसका प्रयोग कश्मीर सुषमा में और किसका वनाष्टक में हुआ है स्पष्ट कीजिए।

(क) प्रकृति को सुन्दर नारी का रूप देकर उसके सौन्दर्य की ओर आकर्षित करने की शैली।

(ख) अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग करके प्रकृति-सौन्दर्य को मार्मिक बनाने की शैली।

(ग) केवल थोड़ी-सी चुनी हुई बातों का वर्णन करके प्रकृति के पूर्ण चित्र को प्रस्तुत करने की शैली।

५–निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए—

(क) अपनी छवि पै मोहि आप ही तन-मन वारति।

(ख) वैष्णव 'श्री' अरु शिव त्रिसूल की आभा भ्राजति।

(ग) कै सामग्री सहित भैरवी चक्र मँझारी॥
परिकल्पित करि धरी शक्ति पूजन की थारी॥

(घ) काली घटा का घमंड घटा, नभ मंडल तारक बृन्द खिले।

(च) वन शारदी-चंद्रिका चादर ओढ़ें, लखै समलंकृत कैसे भले।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

खड़ी-बोली को काव्य-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने वालों में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का नाम सबसे ऊपर है। इनका जन्म जिला आजमगढ़ के निजामाबाद नामक स्थान पर सन् १८५६ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित भोला सिंह था। सन् १९४५ ई० में इनका निधन हुआ।

हरिऔधजी द्विवेदी-युग की विभूति थे, किन्तु ये छायावादी युग तक निरन्तर साहित्य-साधना करते रहे। इन्होंने साहित्य के विविध अंगों पर लिखा है। खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों पर हरिऔधजी का अधिकार था। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—प्रिय-प्रवाह, वैदेही-वनवास, चोखे-चौपदे, चुभते-चौपदे, रसकलश।

प्रिय-प्रवास में कवि ने सरल हिन्दी और संस्कृत तत्सम समासयुक्त पदावली का प्रयोग कर खड़ी बोली के एक नवीन रूप को प्रस्तुत किया है। उसमें राधा तथा कृष्ण के परम्परागत शृंगारी रूप को त्याग कर उनके चरित्र में लोक-कल्याण के आदर्श का सन्निवेश किया गया है और उन्हें लोक-रक्षक, महा-मानव के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इस ग्रंथ में कवि ने संस्कृत वर्णवृत्तों का प्रयोग कर हिन्दी भाषा और साहित्य की अपूर्व सेवा की है।

हरिऔधजी ने अपनी रचनाओं में प्रकृति-चित्रण के विशिष्ट रूपों का प्रयोग कर हिन्दी कविता को नयी दिशा प्रदान की।

चोखे चौपदे, चुभते चौपदे आदि पुस्तकें खड़ी बोली में हैं। इनमें सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं पर मीठी चुटकियाँ हैं और भाषा मुहावरेदार है। ये दोनों ही रचनाएँ हरिऔधजी के ऐतिहासिक महत्त्व को स्थापित करने के लिए पर्याप्त हैं। हरिऔधजी को इनके जीवन-काल में प्रर्याप्त सम्मान मिला था। सन् १९२४ ई० में इन्होंने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान पद को सुशोभित किया। प्रिय प्रवास पर (रु० १२००) का मंगला प्रसाद पारितोषिक भी इन्हें प्राप्त हुआ था।

श्रीकृष्ण सौन्दर्य

जव हुए समवेत शनैः शनैः ।
सकल गोप सधेनु समण्डली ।
तव चले ब्रज-भूषण को लिये ।
अति अलंकृत गोकुल-ग्राम को ॥

गगन-मण्डल में रज छा गई ।
दश-दिशा वहु-शब्दमयी हुई ।
विशद-गोकुल के प्रित-गेह में ।
वह चला वर-स्रोत विनोद का ॥

सकल वासर आकुल से रहे ।
अखिल-मानव गोकुल-ग्राम के ।
अव दिनान्त विलोकत ही वढ़ी ।
ब्रज-विभूषण-दर्शन-लालसा ॥

सुन पड़ा स्वर ज्यों कल-वेणु का ।
सकल-ग्राम समुत्सुक हो उठा ।
हृदय-यंत्र निनादित हो गया ।
तुरत ही अनियंत्रित भाव से ॥

वहु युवा युवती गृह-वालिका ।
विपुल-वालक वृद्ध वयस्क भी ।
विवश-से निकले निज गेह से ।
स्वदृग का दुख-मोचन के लिए ॥

इधर गोकुल से जनता कढ़ी ।
उमगती पगती अति मोद में ।

उधर आ पहुँची वलवीर की ।
विपुल-धेनु-विमंडित-मण्डली ।।

ककुभ-शोभित गोरज वीच से ।
निकलते ब्रज-वल्लभ यों लसे ।
कदन ज्यों करके दिशि कालिमा।
विलसता नभ में नलिनीश है ।।

अतसि-पुष्प अलंकृतकारिणी ।
शरद नील-सरोरुह रंजिनी ।
नवल-सुन्दर-श्याम-शरीर की ।
सजल-नीरद-सी कल-कान्ति थी।।

अति-समुत्तम-अंग समूह था ।
मुकुर-मंजुल औ मनभावना ।
सतत थी जिसमें सुकुमारता ।
सरसता प्रतिविम्वित हो रही ।।

विलसता कटि में पट-पीत था ।
रुचिर-वस्त्र-विभूषित गात था ।
लस रही उर में वनमाल थी ।
कल-दुकूल-अलंकृत स्कंध था ।।

मकर केतन के कल-केतु से ।
लसित थे वर-कुण्डल कान में ।
घिर रही जिनकी सव ओर थी ।
विविध-भावमयी अलकावली ।।

छलकती मुख की छवि-पुंजता ।
छिटिकती क्षिति छू तन की छटा ।
वगरती वर दीप्ति दिगंत में ।
क्षितिज से क्षणदा-करकान्ति-सी ।।

['प्रियप्रवास' से]

प्रश्न

१—गोकुल के प्रत्येक घर में विनोद का स्रोत क्यों वहने लगा ?

२—कृष्ण की वंशी के स्वरों का गोकुल ग्राम के निवासियों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

३—कृष्ण के श्याम शरीर की कान्ति कैसी थी और वह क्या कार्य करने वाली थी ?

४—कवि ने कृष्ण के कमनीय अंगों की उपमा दर्पण से दी है। उस दर्पण में उसको किनका प्रतिविम्व दिखलाई देता है ?

५—कवि ने कृष्ण की अलकावली को विविध भावमयी क्यों कहा है ?

अभ्यास

१—कुछ ऐसी पंक्तियाँ दी जा रही हैं जिनमें उपमा अलंकार है। वनी हुई सारणी के प्रथम में उपमेय, दूसरे में उपमान, तीसरे में वाचक और चौथे स्तम्भ में धर्म लिखकर प्रत्येक के उपमा अलंकार को स्पष्ट कीजिए।

पंक्तियाँ	१ उपमेय	२ उपमान	३ वाचक	४ धर्म
नवल सुन्दर श्याम शरीर की सजल नीरद सी कलकान्ति थी। मकर केतन के कल केतु से लसित थे वर कुण्डल कान में।				

२—कृष्ण के शरीर की कान्ति का वर्णन करने में कवि ने निम्न तीन अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है। प्रत्येक के प्रयोग का कारण लिखिए।

सूर्य, बादल, चन्द्रमा

३—निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए :

(क) हृदय-यंत्र निनादित हो गया, तुरत ही अनियंत्रित भाव से।

(ख) छलकती मुख की छवि पुंजता, छिटिकती छिति छू तन की छटा।

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी-काव्य-जगत के अनुपम रत्न हैं। इनका जन्म सन् १८८६ ई० में चिरगाँव (झांसी) में हुआ था और मृत्यु सन् १९६४ ई० में हुई। गुप्तजी के पिता का नाम सेठ रामचरण था, वे कविता के प्रेमी, निष्ठावान भारतीय थे। पिता के संस्कार पुत्र को पूरी तरह प्राप्त थे।

गुप्तजी ने मौलिक तथा अनूदित लगभग चालीस पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से प्रमुख हैं : रंग में भंग, जयद्रथ वध, पञ्चवटी, अनघ, हिन्दू, गुरुकुल, झंकार, साकेत, यशोधरा, मंगल घट, नहुष, कुणाल गीत, द्वापर, विष्णुप्रिया, दिवोदास, मेघनादवध, विरहिणी-व्रजांगना आदि। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से 'साकेत' महाकाव्य पर मंगला प्रसाद पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

गुप्तजी ने खड़ी बोली के शुद्ध, परिष्कृत और तत्सम-बहुल रूप को ही अपनाया है। गुप्तजी की भाषा भावों में अनुकूल है। गुप्तजी के काव्य में अलंकारों का सहज स्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

हिन्दी की आधुनिक युग की समस्त काव्य-धाराओं को गुप्तजी ने अपने साहित्य में अपनाया है—प्रबन्ध-काव्य, खण्ड-काव्य, गीतिनाट्य और छायावादी शैली के गीत।

गुप्तजी खड़ी बोली के उन्नायकों में प्रधान हैं, इन्होंने खड़ी बोली को काव्य के अनुकूल भी बनाया और जनरुचि को भी उसकी ओर प्रवृत्त किया।

मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति के अमर गायक, उद्भट प्रस्तोता और सामाजिक चेतना के प्रतिनिधि कवि थे। इन्हें राष्ट्रकवि होने का गौरव प्राप्त था। गुप्तजी बारह वर्ष तक राज्य-सभा के मनोनीत सदस्य रहे।

अयोध्या की नर-सत्ता

करके ध्वनि-संकेत शूर ने शंख वजाया,
अन्तर का आह्वान वेग से वाहर आया।
निकल उठा उच्छ्वास वक्ष से उभर-उभर के,
हुआ कम्बु कृतकृत्य कण्ठ की अनुकृति करके।
उधर भरत ने दिया साथ ही उत्तर मानों,
एक-एक दो हुए, जिन्हें एकादश जानों!
यों ही शंख असंख्य हो गये, लगी न देरी,
घनन-घनन वज उठी गरज तत्क्षण रण-भेरी।
काँप उठा आकाश, चौंककर जगती जागी,
छिपी क्षितिज में कहीं, सभय निद्रा उठ भागी।
वोले वन में मोर, नगर में डोले नागर,
करने लगे तरंग-भंग सौ-सौ स्वर-सागर।
उठी क्षुब्ध-सी अहा! आयोध्या की नर-सता,
सजग हुआ साकेत-पुरी का पत्ता-पत्ता।

० ० ० ०

चरम-मरर खुल गये अरर बहु रवस्फुटों से,
क्षणिक रुद्ध थे तदपि विकट भट उरः पुटों से।
वाँधे थे जन पाँच-पाँच आयुध मन भाये,
पंचानन गिरि - गुहा छोड़ ज्यों वाहर आये।
"धरने आया कौन आग, मणियों के धोखे?"
स्त्रियाँ देखने लगीं दीप धर, खोल झरोखे।
"ऐसा जड़ है कौन, यहाँ भी जो चढ़ आवे?
वह थल भी है कहाँ, जहाँ निज दल बढ़ आवे?

राम नहीं घर, यही सोचकर लोभी-मोही,
क्या कोई माण्डलिक हुआ सहसा विद्रोही ?
मरा अभागा, उन्हें जानता है जो वन में,
रमे हुए हैं यहाँ राम-राघव जन-जन में।"
"पुरुष-वेष में साथ चलूँगी मैं भी प्यारे,
राम-जनकी संग गये, हम क्यों हों न्यारे ?"
"प्यारी, घर ही रहो उर्मिला रानी-सी तुम,
क्रान्ति-अनन्तर मिलो शान्ति मनमानी-सी तुम !"
पुत्रों को नत देख धात्रियाँ वोलीं धीरा—
"जाओ वेटा–'राम काज, क्षण भंग शरीरा' ?"
पति से कहने लगीं पत्नियाँ—"जाओ स्वामी,
वने तुम्हारा वत्स तुम्हारा ही अनुगामी !
जाओ, अपने राम-राज्य की आन वढ़ाओ,
वीर-वंश की वान, देश का मान वढ़ाओ,"
"अम्व तुम्हारा पुत्र पैर पीछे न धरेगा,
प्रिये, तुम्हारा पति न मृत्यु से कहीं डरेगा।
फिर भी फिर भी अहो ! विकल-सी तुम हो रोती?"
"हम यह रोतीं नहीं, वारतीं मानस-मोती !"
ऐसे अगणित भाव उठे रघु-सगर-नगर में,
वगर उठे वढ़ अगर-तगर-से डगर-डगर में।

['साकेत' से]

गीत

सखि, वे मुझसे कह कर जाते !
सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की वात;
पर चोरी-चोरी गये, यही वड़ा व्याघात।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पंथ-वाधा ही पाते ?

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना ?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र-धर्म के नाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विकल गर्व अव जागा ?
जिसे अपनाया था, त्यागा।
रहें स्मरण ही आते !
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते,
सदय हृदय वे कैसे सहते ?
गये तरस ही खाते !
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूं मैं किस मुख से ?
आज अधिक वे भाते !
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

गये, लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व-अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे ?
पर क्या गाते-गाते,
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

['यशोधरा' से]

पंचवटी

चारु चंद्र की चंचल किरणें
खेल रही हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है
अवनि और अम्बर-तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से,
मानो झीम रहे हैं तरु भी
मंद पवन के झोंकों से।

(२)

पंचवटी की छाया में है
सुंदर पर्ण-कुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर
धीर वीर निर्भीक मना,
जाग रहा यह कौन धनुर्धर,
जब कि भुवन-भर सोता है ?

भोगी कुसुमायुध योगी-सा
बना दृष्टिगत होता है॥

(३)

किस व्रत में है व्रती वीर यह
निद्रा का यों त्याग किए,
राजभोग्य के योग्य विपिन में
बैठा आज विराग लिए।
बना हुआ है प्रहरी जिसका
उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका
तन है, मन है, जीवन है॥

(४)

मर्त्यलोक-मालिन्य मेटने
स्वामि-संग जो आई है,
तीन लोक की लक्ष्मी ने यह
कुटी आज अपनाई है।
वीर वंश-की लाज यही है
फिर क्यों वीर न हो प्रहरी?
विजन देश है, निशा शेष है,
निशाचरी माया ठहरी।

(५)

क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह,
है क्या ही निस्तब्ध निशा;
है स्वच्छंद-सुमंद गंधवह,
निरानंद है कौन दिशा?

बंद नहीं अब भी चलते हैं
नियति-नटी के कार्य-कलाप,
पर कितने एकांत भाव से,
कितने शांत और चुपचाप।

(६)

है बिखेर देती वसुंधरा
मोती, सबके सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको
सदा सबेरा होने पर!
और विरामदायिनी अपनी
संध्या को दे जाता है,
शून्य श्याम तनु जिससे उसका
नया रूप झलकाता है।

(७)

सरल तरल जिन तुहिन कणों से
हँसती हर्षित होती है,
अति आत्मीया प्रकृति हमारे
साथ उन्हीं से रोती है।
अनजानी भूलों पर भी वह
अदय दंड तो देती है,
पर बूढ़ों को भी बच्चों-सा
सदय भाव से सेती है।

(८)

तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके
पर है मानो कल की बात,

वन को आते देख हमें जब
आर्त, अचेत हुए थे तात।
अब वह समय निकट ही है जब
अवधि पूर्ण होगी वन की;
किन्तु प्राप्ति होगी इस जन को
इससे बढ़कर किस धन की ?

(६)

और आर्य को ? राज्य-भार तो
वे प्रजार्थ ही धारेंगे,
व्यस्त रहेंगे, हम सबको भी
मानो विवश विसारेंगे।
कर विचार लोकोपकार का
हमें न इससे होगा शोक,
पर अपना हित आप नहीं क्या
कर सकता है यह नरलोक ?

['पंचवटी' से]

प्रश्न

१—रात्रि के समय अयोध्या नगर में शंख-ध्वनि क्यों हो उठी ?
२—शंख-ध्वनि को सुनकर नागरिकों के मन में क्या शंका उत्पन्न हुई ?
३—रण-प्रयाण के लिए तैयार देखकर पत्नी ने अपने पति से तथा माता ने अपने पुत्र से क्या कहा ?
४—पति-पत्नी के इस कथोपकथन के द्वारा गुप्तजी आज देश की जनता को क्या संदेश दे रहे हैं ?
५—सखि वे मुझसे कहकर जाते गीत के द्वारा गुप्तजी ने भारतीय नारी के किन जीवन आदर्शों को व्यक्त किया है ?
६—यशोधरा यह क्यों कहती है कि गौतम चोरी से सिद्धि प्राप्त करने गये ?

७–भोगी कुसुमायुध योगी-सा बना कौन दिखलायी देता है ? कवि ने उसको भोगी कुसुमायुध क्यों कहा है ?

८–प्रहरा बना हुआ वह कुटीर के किस धन की रक्षा कर रहा है ?

९–संध्या को सूर्य की 'विरामदायिनी' क्यों कहा गया है ? सूर्य के अतिरिक्त संध्या और किस के लिए विरामदायिनी है ?

१०–राम के राज्यभार सँभालने से लक्ष्मण को अपने किस अहित की आशंका हो रही है ?

११–लक्ष्मण संसार के मनुष्यों से क्या करने की आशा करते हैं ?

अभ्यास

१–निम्नांकित काव्य-पंक्तियों में उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक में से जो-जो अलंकार हों उन्हें लिखिए—

(क) बंद नहीं अब भी चलते हैं नियति-नटी के कार्य कलाप ।

(ख) चारु चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में ।

(ग) बाँधे थे जन पाँच-पाँच आयुध मन भाये ।
पंचानन गिरि गुहा छोड़ ज्यों बाहर आये ॥

(घ) पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से ।
मानों झूम रहे हैं तरु भी मंद पवन के झोंकों से ॥

२–पंचवटी-प्रसंग में कवि ने प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन किया है। नीचे उन बातों को लिखा गया है जिनका प्रयोग कवि ने प्रकृति-वर्णन में किया है। उन पंक्तियों का चयन करके लिखिए जिनमें वे बातें आयी हैं :—

- पृथ्वी पर निकली हरी घास की नोकें हिल रही हैं मानों पृथ्वी उन्हीं के द्वारा अपने पुलक को प्रकट कर रही है।
- रात्रि के समय चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई है और वातावरण शांत है।
- प्रातःकाल सूर्य के निकलने पर ओस की बूँदें गायब हो जाती हैं।
- संध्या के समय तारे निकल आते हैं जिससे उसका सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता है।

३–कवि कभी-कभी प्रकृति के सौन्दर्य पर अपने मन के भावों का प्रतिबिम्ब देखता

है। ऐसी दशा में प्रकृति उसके समक्ष सजीव होकर एक व्यक्तित्व ग्रहण कर लेती है। कभी वह कवि को प्रसन्न और कभी विषाद-मग्न दिखाई पड़ती है— जैसे महादेवीजी के निम्न गीत में बदली का रूप उनके विषादमय भावों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करके सजीव हो गया है। बदली कहती है—

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली।
मैं नीर भरी दुख की बदली।

गुप्तजी के 'पंचवटी' प्रसंग से ऐसी पंक्तियाँ छाँटकर लिखिये जिनमें प्रकृति को इस प्रकार संवेदनशील सजीव रूप दिया गया हो।

४–'सखि, वे मुझसे कह कर जाते' गीत के विप्रलम्भ शृंगार की निम्नलिखित शीर्षकों में व्याख्या कीजिए—

स्थायी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, आश्रय, अनुभाव, संचारी भाव, रस

५–निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए—

(क) अनजानी भूलों पर भी वह अदय दंड तो देती है।
पर बूढ़ों को भी बच्चों-सा सदय भाव से सेती है॥

(ख) जिसने अपनाया था त्यागा,
रहें स्मरण ही आते।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

(ग) काँप उठा आकाश......सभय निद्रा उठ भागी।

जयशंकर 'प्रसाद'

जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म वाराणसी में 'सुँघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध एक प्रतिष्ठित, वैश्य परिवार में सन् १८८९ ई० में हुआ था। 'प्रसाद' के पिता बाबू देवी प्रसाद की मृत्यु इनके बाल्यकाल में ही हो गयी थी। 'प्रसाद' की शिक्षा स्कूल में केवल आठवें दर्जे तक हुई थी किन्तु घर पर इन्हें अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की अच्छी शिक्षा मिली। संस्कृत-साहित्य के प्रति इनका गहन अनुराग था। इन्होंने वेद और उपनिषदों के साथ-साथ इतिहास और दर्शन का भी गंभीर अध्ययन किया। काशी के अच्छे कवियों की संगति इन्हें बाल्यकाल से ही मिल गयी, जिससे बचपन से ही इनकी रुचि काव्य के प्रति जागरित हो गयी थी। इनका जीवन बड़ा संघर्षपूर्ण रहा तथा अनेक पारिवारिक कठिनाइयों का इन्हें सामना करना पड़ा। सन् १९३७ ई० में क्षय-रोग से इनका देहावसान हो गया।

पन्द्रह वर्ष की आयु से 'प्रसाद' ने लिखना आरम्भ किया था। ये बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। इन्होंने काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध सभी प्रकार की साहित्यक रचनाएँ की हैं। किन्तु 'प्रसाद' मूलतः कवि हैं। आपके प्रमुख काव्य-ग्रन्थ हैं—लहर, झरना, प्रेम-पथिक, करुणालय, कानन-कुसुम, आँसू तथा कामायनी। अनेक विद्वानों की राय में कामायनी आधुनिक हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इसमें मानव-सभ्यता के विकास की कथा रूपक के द्वारा प्रस्तुत की गयी है। 'कामायनी' को मंगला प्रसाद पारितोषिक से सम्मानित किया गया है।

वस्तुतः हिन्दी में नवीन युग का द्वार 'प्रसाद' ने ही खोला है। आज अनेक विद्वान एक स्वर से इन्हें छायावाद का प्रवर्तक और उसका श्रेष्ठ कवि मानते हैं। निश्चय ही ये युग-प्रवर्तक साहित्य-स्रष्टा थे। इतिहास, दर्शन और कला के मणि-कांचन संयोग ने इनके काव्य को अपूर्व गरिमा प्रदान की है। छायावादी शैली-शिल्प का प्रौढ़तम रूप इनकी कविता में उपलब्ध होता है।

आह्वान-गीत

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती —
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—वढ़े चलो, वढ़े चलो !

असंख्य कीर्ति रश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्य दाह-सी ।
सपूत मातृभूमि के—
रुको न शूर साहसी !
अराति सैन्य सिन्धु में--सुवाडवाग्नि—से जलो,
प्रवीर हो जयी वनो -वढ़े चलो, वढ़े चलो !

['चन्द्रगुप्त' से]

बसन्त की प्रतीक्षा

परिश्रम करता हूँ अविराम, वनाता हूँ क्यारी औ कुञ्ज ।
सींचता दृग-जल से सानन्द, खिलेगा कभी मल्लिका-पुंज ।।

न काँटों की है कुछ परवाह, सजा रखता हूँ इन्हें सयत्न ।
कभी तो होगा इनमें फूल, सफल होगा यह कभी प्रयत्न ।।

कभी मधु राका देख इसे, करेगी इठलाती मधुहास ।
अचानक फूल खिल उठेंगे, कुंज होगा मलयज-आवास ।।

नई कोंपल में से कोकिल, कभी किलकारेगा सानन्द ।
एक क्षण बैठ हमारे पास, पिला दोगे मदिरा-मकरन्द ।।

मूक हो मतवाली ममता, खिले फूलों से विश्व अनन्त ।
चेतना बने अधीर मिलिन्द, आह वह आवे विमल वसंत ॥

['झरना' से]

पुनर्मिलन

चौंक उठी अपने विचार से
कुछ दूरागत ध्वनि सुनती,
इस निस्तब्ध निशा में कोई
चली आ रही है कहती—
"अरे बता दो मुझे दया कर
कहाँ प्रवासी है मेरा ?
उसी बावले से मिलने को
डाल रही हूँ मैं फेरा ।
रूठ गया था अपनेपन से
अपना सकी न उसको मैं,
वह तो मेरा अपना ही था
भला मनाती किसको मैं !
यही भूल अब शूल सदृश हो
साल रही उर में मेरे,
कैसे पाऊँगी उसको मैं
कोई आकर कह दे रे !"
इड़ा उठी, दिख पड़ा राज-पथ
धुंधली-सी छाया चलती;
वाणी में थी करुण वेदना
वह पुकार जैसी जलती ।

शिथिल शरीर वसन विशृंखल
कवरी अधिक अधीर खुली,
छिन्न-पत्र मकरन्द लुटी-सी
ज्यों मुरझायी हुई कली।

नव कोमल अवलम्ब साथ में
वय किशोर उँगली पकड़े,
चला आ रहा मौन धैर्य-सा
अपनी माता को जकड़े।

थके हुए थे दुखी बटोही
वे दोनों ही माँ-बेटे,
खोज रहे थे भूले मनु को
जो घायल हो कर लेटे।

इड़ा आज कुछ द्रवित हो रही
दुखियों को देखा उसने,
पहुँची पास और फिर पूछा
"तुमको विसराया किसने ?

इस रजनी में कहाँ भटकती
जाओगी तुम बोलो तो,
बैठो आज अधिक चंचल हूँ
व्यथा-गाँठ निज खोलो तो।

जीवन की लम्बी यात्रा में
खोये भी हैं मिल जाते,
जीवन है तो कभी मिलन है
कट जातीं दुख की रातें।"

श्रद्धा रुकी कुमार श्रान्त था
मिलता है विश्राम यहीं,

चली इड़ा के साथ जहाँ पर
वह्नि-शिखा प्रज्वलित रही।
सहसा धधकी वेदी-ज्वाला
मंडप आलोकित करती,
कामायनी देख पायी कुछ
पहुँची उस तक डग भरती।
और वही मनु ! घायल सचमुच
तो क्या सच्चा स्वप्न रहा ?
"आह प्राण प्रिय ! यह क्या ! तुम यों ?"
घुला हृदय, बन नीर बहा।

इड़ा चकित, श्रद्धा आ बैठी
वह थी मनु को सहलाती,
अनुलेपन-सा मधुर स्पर्श था
व्यथा भला क्यों रह जाती ?
उस मूर्च्छित नीरवता में कुछ
हलके से स्पन्दन आये,
आँखें खुलीं चार कोनों में
चार बिन्दु आकर छाये।
उधर कुमार देखता ऊँचे
मन्दिर, मण्डप, वेदी को,
यह सब क्या है नया मनोहर
कैसे ये लगते जी को ?
माँ ने कहा "अरे आ तू भी
देख पिता हैं पड़े हुए,"
'पिता ! आ गया लो' यह कहते
उसके रोएँ खड़े हुए !

"माँ जल दे, कुछ प्यासे होंगे
क्या बैठी कर रही यहाँ ?"
मुखर हो गया सूना मंडप
यह सजीवता रही कहाँ ?

आत्मीयता घुली उस घर में
छोटा - सा परिवार वना,
छाया एक मधुर स्वर उस पर
श्रद्धा का संगीत वना।

[कामामनी के 'निर्वेद' सर्ग से]

प्रश्न

१—'आह्वान गीत' में स्वतंत्रता देवी के लिए कवि ने किन विशेषणों का प्रयोग किया है ? उनकी सार्थकता स्पष्ट कीजिए।

२—रणभूमि में वीरता पूर्वक अग्रसर होने के लिए कवि ने जो दो कारण वताये हैं, उन्हें स्पष्ट कीजिए।

३—'अराति सैन्य सिन्धु में—सुवाडवाग्नि से जलो।' में कौन-कौन से अलंकार हैं।

४—कवि किस आशा से अनुप्रेरित होकर क्यारी और कुंज में परिश्रम कर रहा है ?

५—फूल खिलने के अतिरिक्त इस कविता में वसन्त ऋतु के अन्य किन दृश्यों का उल्लेख किया गया है ?

६—कामायनी को अपनी कौन-सी भूल वार-वार हृदय में चुभती प्रतीत हो रही है ?

७—इड़ा को कामायनी 'धुंधली-सी छाया' क्यों लग रही थी ?

८—विरहिणी के रूप में कामायनी का चित्रण कवि ने किस प्रकार किया है ?

९—कामायनी का पुत्र किस प्रकार चल रहा था और क्यों ?

अभ्यास

१—निम्नांकित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए—

(क) स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।

(ख) चेतना बने अधीर मिलिन्द।

(ग) छिन्न-पत्र मकरंद लूटी-सी ज्यों मुरझायी हुई कली।

(घ) धुला हृदल बन नीर बहा।

२—निम्न सारणी में स्तम्भ 'क' में कुछ तथ्य दिये गये हैं। नीचे उन तथ्यों के कारण हैं पर वे क्रम में नहीं दिये गये। स्तम्भ 'ख' में स्तम्भ 'क' के तथ्यों के सामने उनके कारण चुनकर लिखिए।

- इड़ा की संवेदनापूर्ण बातें सुनकर कामायनी को बड़ी सान्त्वना प्राप्त हुई।
- कवि आशा करता है कि कभी फूल भी उत्पन्न होंगे और उसका प्रयत्न सफल होगा।
- कामायनी का मधुर स्पर्श अनुलेपन के सामान था।
- नगर की वस्तुएँ कुमार को नवीन प्रतीत हो रही थीं।

क	ख
१—कवि काँटों की परवाह न करके क्यारियों को सजाता है।	
२—कामायनी ने इड़ा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया।	
३—कुमार नगर की शोभा देख कर चकित था।	
४—मनु की समस्त पीड़ा दूर हो गयी।	

३—कवि कभी-कभी उपमा अलंकार में स्थूल उपमेय के लिए ऐसे उपमान का प्रयोग करता है जो अमूर्त होता है। अमूर्त के माध्यम से मूर्त का ज्ञान कराना स्वयं अपने में एक कठिन कार्य है, पर 'प्रसाद' को इस प्रकार के उपमानों के प्रयोग में बड़ी सफलता मिली है। नीचे 'प्रसाद' की रचनाओं से कुछ ऐसी पंक्तियाँ दी जा रही हैं, जिनमें उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है। उस पंक्ति के सामने के कोष्ठक में सही (✓) का चिह्न लगाइए जिसमें सूक्ष्म उपमान के द्वारा

स्थूल उपमेय का चित्रण किया गया है। अन्य के सामने के कोष्ठक में उपमान का धर्म लिखिए।

(क) शिथिल शरीर वसन विश्रृंखल
कवरी अधिक अधीर खुली।
छिन्न पत्र मकरन्द लुटी-सी
ज्यों मुरझाई हुई कली। ( )

(ख) नव कोमल अवलम्ब साथ में
वय किशोर उँगली पकड़े, ( )
चला आ रहा मौन धैर्य-सा
अपनी माता को जकड़े। ( )

(ग) असंख्य कीर्ति रश्मियाँ
विकीर्ण दिव्य दाह-सी। ( )

(घ) अराति सिंधु सैन्य में सुवाडवाग्नि-से जलो। ( )

(ङ) अनुलेपन सा मधुर स्पर्श था व्यथा भला क्यों रह जाती ( )

४—जिस प्रकार कवि परम्परा में स्वतंत्रता का वर्ण उज्ज्वल माना गया है उसी प्रकार ज्ञात करो कि नम्नांकित के क्या वर्ण माने जाते हैं—

पाप, पुण्य, यश, अनुराग

५—'आह्वान गीत' कंठस्थ कीजिए।

———

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सन् १८९७ ई० में बंगाल के महिषादल राज्य में हुआ था। इनके पिता उत्तर-प्रदेश के उन्नाव जिले के निवासी थे, किन्तु आजीविका के लिए बंगाल चले गये थे। ढाई वर्ष की आयु में इन्हें माता की गोद से वंचित होना पड़ा और इनके पालन-पोषण का भार पिता के कंधों पर आ पड़ा। 'निराला' की प्रारम्भिक शिक्षा महिषादल में हुई। संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी का अध्ययन इन्होंने घर पर ही किया। सन् १९६१ ई० में इनका देहावसान हो गया।

'निराला' बहुमुखी प्रतिभा वाले साहित्यकार थे। कविता के अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, आलोचना और संस्मरण भी लिखे हैं। इनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं—परिमल, गीतिका, अनामिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, अपरा, बेला, नये पत्ते, आराधना, अर्चना आदि। मूलतः ये कवि थे और छायावाद के प्रमुख प्रवर्तकों में से एक थे। इनकी कविता में विषय की विविधता और नवीन प्रयोगों की बहुलता है। शृंगार, रहस्यवाद, राष्ट्र-प्रेम, प्रकृति-वर्णन के अतिरिक्त शोषण और वर्ग-भेद के विरुद्ध विद्रोह, शोषितों एवं दीन-हीन जन के प्रति सहानुभूति तथा पाखण्ड और प्रदर्शन के प्रति व्यंग्य इनके काव्य की विशेषताएँ हैं।

'निराला' का मुक्त एवं क्रान्तिकारी स्वभाव परम्परागत छन्द विधान को स्वीकार न कर पाया और इन्होंने छन्द का विकास किया। 'निराला' की दो शैलियाँ स्पष्ट हैं—एक, उत्कृष्ट छायावादी गीतों में प्रयुक्त, लम्बी, समस्त पदावली युक्त, तत्सम बहुल, गहन विचार से ओत-प्रोत शैली और दूसरी सरल, प्रवाहपूर्ण, प्रचलित उर्दू के शब्द लिये व्यंग्यपूर्ण और चुटीली शैली।

इनकी रचनाओं में आग है, पौरुष है और है सड़ी-गली परम्पराओं से विद्रोह। कुल मिलाकर निराला हिन्दी के क्रान्तिकारी कवि हैं।

भारति-वन्दना

भारति ! जय, विजय करे !
कनक — शस्य — कमलधरे !

लङ्का पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर वहु-अर्थ-भरे !

तरु – तृण – वन – लता – वसन,
अञ्चल में खचित सुमन,
गङ्गा ज्योतिर्जल-कण
धवल धार हार गले !

मुकुट शुभ्र हिम – तुषार,
प्राण प्रणव ओङ्कार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शत मुख – शतरव – मुखरे !

['गीतिका' से]

दान

निकला पहिला अरविन्द आज,
देखता अनिन्द्य रहस्य-साज;
सौरभ – वसना समीर बहती,
कानों में प्राणों की कहती;
गोमती क्षीण – कटि नटी नवल,

नृत्यपर—मधुर आवेश—चपल।
मैं प्रातः पर्यटनार्थ चला
लौटा, आ पुल पर खड़ा हुआ;
सोचा—"विश्व का नियम निश्चल,
जो जैसा, उसको वैसा फल
देती यह प्रकृति स्वयं सदया,
सोचने को न रहा कुछ नया,
सौन्दर्य, गीत, वहु वर्ण, गन्ध,
भाषा, भावों के छन्द—वन्ध,
और भी उच्चतर जो विलास,
प्राकृतिक दान वे, सप्रयास
या अनायास आते हैं सव,
सव में है श्रेष्ठ, धन्य मानव।"
फिर देखा, उस पुल के ऊपर
वहु संख्यक वैठे हैं वानर।
एक ओर पंथ के, कृष्णकाय
कंकाल शेष नर मृत्यु-प्राय
वैठा सशरीर दैन्य दुर्वल,
भिक्षा को उठी दृष्टि निश्चल,
अति क्षीण कण्ठ, है तीव्र श्वास,
जीता ज्यों जीवन से उदास।
ढोता जो वह, कौन-सा शाप?
भोगता कठिन, कौन-सा पाप?
यह प्रश्न सदा ही है पथ पर,
पर सदा मौन इसका उत्तर।

जो वड़ी दया का उदाहरण,
वह पैसा एक, उपायकरण !
मैंने झुक नीचे को देखा,
तो झलकी आशा की रेखा–
विप्रवर स्नान कर चढ़ा सलिल
शिव पर दूर्वादिल, तण्डुल, तिल,
लेकर झोली आये ऊपर,
देखकर चले तत्पर वानर।
द्विज राम-भक्त, भक्ति की आश
भजते शिव को वारहों मास;
कर रामायण का पारायण
जपते हैं श्रीमन्नारायण;
दुख पाते जव होते अनाथ,
कहते कपियों से जोड़ हाथ,
मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन,
झोली से पुए निकाल लिये;
वढ़ते कपियों के हाथ दिये,
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर दानव,
वोला मैं—"धन्य, श्रेष्ठ मानव !"

['अपरा' से]

तोड़ती पत्थर

वह तोड़ती पत्थर।
देखा उसे मैंने इलाहावाद के पथ पर।
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार
पेड़, वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती वार-वार प्रहार—
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार।
चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप।
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगीं छा गईं
प्राय: हुई दुपहर;
वह तोड़ती पत्थर।
देखते देखा मुझे तो एक वार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार।
देख कर कोई नहीं।
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं।
सजा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
'मैं तोड़ती पत्थर।'

['अनामिका' से]

प्रश्न

१–भारति वन्दना गीत में कवि ने भारत-भूमि का किस रूप में चित्रण किया है ?
२–कवि ने भारत-माता के स्वरूप को किस प्रकार पवित्रता का प्रतीक बना दिया है ?
३–कवि ने दिशाओं को उदार क्यों कहा है ?
४–'कानों में प्राणों की कहती' से कवि का क्या तात्पर्य है ।
५–पुल पर खड़े होकर कवि क्या सोचता है ?
६–कवि ने प्रकृति को सदया क्यों कहा है ?
७–मनुष्य को प्रकृति से क्या प्राप्त हुआ है ?
८–मानव के संबंध में पहले कवि की क्या धारणा थी ?
९–मानव के संबंध में कवि की धारणा में परिवर्तन क्यों हुआ ?
१०–कवि को अपने किस प्रश्न का उत्तर नहीं प्राप्त हुआ ?
११–पुल से नीचे झुक कर देखने पर कवि के मन में कौन-सी आशा जागरित हुई ?
१२–पत्थर तोड़ने वाली मजदूरिन की दयनीय दशा को और अधिक उभारने के लिए कवि ने किस विरोधी स्थिति की ओर संकेत किया है ?
१३–मजदूरिन को देख कर कवि को कौन-सी नवीन अनुभूति प्राप्त हुई ?
१४–सितार और झंकार किसके प्रतीक हैं ?

अभ्यास

१–'भारति वन्दना' गीत में कवि ने भारत-भूमि को ही भारत-माता का पवित्र रूप प्रदान किया है। यह रूपक अलंकार है। इस रूपक की पुष्टि करने के लिए कवि ने अनेक छोटे रूपकों की योजना बनायी है। नीचे इन छोटे रूपकों के प्रस्तुत दिये जा रहे है। उनके सामने संबंधित अप्रस्तुत लिखिए।

प्रस्तुत	अप्रस्तुत
१–लंका	....
२–तरु-तृण-वन-लता	....
३–गंगा ज्योतिर्जल-कण धवल धार	....
४–शुभ्र हिम-तुषार	....

२–'दान' शीर्षक रचना में एक प्रसंग को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कवि ने पृष्ठ-भूमि के रूप में एक छोटा-सा प्रकृति का चित्र भी प्रस्तुत किया है। इस चित्र से उन पंक्तियों का चयन कीजिए जिनमें प्रकृति को मानवी का रूप प्रदान किया है।

३–दान शीर्षक कविता में कवि द्वारा किये गये व्यंग्य की पूर्ण व्याख्या कीजिए।

४–वह तोड़ती पत्थर एक लय प्रधान रचना है। कवि ने अपने को छंद के बंधनों से मुक्त रखा है। हिन्दी में इस शैली को लोकप्रिय बनाने का श्रेय निरालाजी को ही है। इस रचना को बार-बार लयात्मक ढंग से पढ़िए। इस प्रकार की छंद-मुक्त रचनाओं का अपनी रुचि का एक संग्रह बनाइए।

———

सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म सन् १९०० ई० में अल्मोड़ा के निकट कौसानी ग्राम में हुआ था। जन्म के छः घन्टे बाद ही इनकी माता का शरीरांत हो गया। इनका लालन-पालन प्रकृति की गोद में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम की पाठशाला में हुई। हाई स्कूल की परीक्षा वाराणसी से पास करके पन्त प्रयाग के म्योर सेंट्रल कालिज में प्रविष्ट हुए, किन्तु सन् १९२१ ई० में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ होने पर इन्होंने कालिज छोड़ दिया और साहित्य साधना में प्रवृत्त हुए। तब से आज तक अर्थात् पिछले ५५ वर्षों से ये हिन्दी-साहित्य की निरन्तर सेवा करते आ रहे हैं। साहित्य अकादमी ने इन्हें पुरस्कृत किया है। भारत-सरकार ने 'पद्मभूषण' अलंकार से सम्मानित किया है। इनकी कृति 'चिदम्बरा' पर भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार मिल चुका है।

इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, पल्लविनी, अतिमा, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, युगपथ, शिल्पी, चिदम्बरा, ऋता, लोकायतन, रश्मिबन्ध आदि।

'प्रसाद तथा 'निराला' की भाँति पन्त भी छायावाद के आधार-स्तम्भ हैं। छायावाद अपने पूरे सौन्दर्य और समृद्धि के साथ पन्त के काव्य में प्रकट हुआ है। ये प्रकृति के सुन्दर, सजीव, मनोरम दृश्य अंकित करने में सिद्धहस्त हैं, अतः इन्हें 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है।

पन्त के काव्य-जीवन की यात्रा के स्पष्टतः तीन सोपान माने जा सकते हैं।

१—छायावादी काव्य रचनाएँ, २—प्रगतिवादी का काव्य तथा ३—श्री अरविन्द के दर्शन से प्रभावित होने के पश्चात् की अन्तश्चेतनावादी, आध्यामित्क कविताएँ, जहाँ ये मानवतावाद के सच्चे समर्थक के रूप में प्रकट हुए हैं।

पन्त के काव्य में मानवता के प्रति सहज आस्था है। ये एक नवीन, सुन्दर, सुखी समाज की सृष्टि के प्रति आशावान हैं। विश्व-बंधुत्व और भ्रातृत्व के प्रति यह आशावादी स्वर ही इनके काव्य को उदात्त बनाता है। काव्य-कला के प्रति पन्त

विशेष सचेष्ट हैं। इनकी भाषा चित्रमयी एवं अलंकृत है तथा स्पष्ट, सशक्त विम्ब-योजना ने उसे अत्यन्त प्रभावमयी बना दिया है । संक्षेप में सुन्दर, सुकुमार भावों के चतुर-चितेरे पन्त ने खड़ी वोली को व्रजभाषा जैसा माधुर्य एवं सरसता प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। पन्त गम्भीर विचारक हैं, उत्कृष्ट कवि हैं और हैं मानवता के सहज आस्थावान कुशल शिल्पी, जो नवीन सृष्टि के अभ्युदय का स्वप्न देखने में तल्लीन हैं।

चींटी

चींटी को देखा ?
वह सरल, विरल, काली रेखा
तम के तागे सी जो हिल-डुल
चलती लघुपद पल-पल मिल-जुल
वह है पिपीलिका पाँति !
देखो ना, किस भाँति
काम करती वह संतत !
कन-कन कनके चुनती अविरत !

गाय चराती,
धूप खिलाती,
बच्चों की निगरानी करती,
लड़ती, अरि से तनिक न डरती,
दल के दल सेना सँवारती,
घर आँगन, जनपथ बुहारती !

* * * *

चींटी है प्राणी सामाजिक,
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक !

देखो चींटी को ?
उसके जी को ?
भूरे बालों की सी कतरन,

छिपा नहीं उसका छोटापन,
वह समस्त पृथ्वी निर्भय
विचरण करती, श्रम में तन्मय,
वह जीवन की चिनगी अक्षय !

वह भी क्या देही है, तिल-सी ?
प्राणों की रिलमिल झिलमिल-सी !
दिन भर में वह मीलों चलती,
अथक, कार्य से कभी न टलती ॥

['युगवाणी' से]

यह धरती कितना देती है !

मैंने छुटपन में छिपकर पैसे बोए थे,
सोचा था, पैसों के प्यारे पेड़ उगेंगे,
रुपयों की कलदार मधुर फसलें खनकेंगी,
और, फूल फल कर, मैं मोटा सेठ बनूँगा !
पर बंजर धरती में एक न अंकुर फूटा,
बंध्या मिट्टी ने न एक भी पैसा उगला !—
सपने जाने कहाँ मिटे, कब धूल हो गये !
मैं हताश हो, बाट जोहता रहा दिनों तक
बाल-कल्पना के अपलक पाँवड़े बिछा कर !
मैं अबोध था, मैंने गलत बीज बोए थे,
ममता को रोपा था, तृष्णा को सींचा था !

अर्धशती हहराती निकल गयी है तब से !
कितने ही मधु पतझर बीत गए अनजाने,
ग्रीष्म तपे, वर्षा झूलीं, शरदें मुसकाईं,
सी-सी कर हेमन्त कँपे, तरु झरे, खिले वन !
औ' अब फिर से गाढ़ी ऊदी लालसा लिये
गहरे कजरारे बादल बरसे धरती पर,
मैंने कौतूहल वश, आँगन के कोने की,
गीली तह को यों ही उँगली से सहलाकर
बीज सेम के दबा दिये मिट्टी के नीचे !—
भू के अंचल में मणि माणिक बाँध दिये हों !
मैं फिर भूल गया इस छोटी-सी घटना को,
और बात भी क्या थी, याद जिसे रखता मन !
किन्तु, एक दिन जब मैं सन्ध्या को आँगन में
टहल रहा था—तब सहसा मैंने जो देखा
उससे हर्ष-विमूढ़ हो उठा मैं विस्मय से !

देखो, आँगन के कोने में कई नवागत,
छोटी-छोटी छाता ताने खड़े हुए हैं।
छाता कहूँ कि विजय पताकाएँ जीवन की,
या हथेलियाँ खोले थे वे नन्हीं, प्यारी—
जो भी हो, वे हरे-हरे उल्लास से भरे
पंख मारकर उड़ने को उत्सुक लगते थे,—
डिम्ब तोड़कर निकले चिड़ियों के बच्चों से !

निर्निमेष, क्षण भर, मैं उनको रहा देखता—
सहसा मुझे स्मरण हो आया,—कुछ दिन पहिले,
बीज सेम के रोपे थे मैंने आँगन में,

और उन्हीं से बौने पौधों की यह पलटन
मेरी आँखों के सम्मुख अब खड़ी गर्व से,
नन्हें नाटे पैर पटक, बढ़ती जाती है !

तब से उनको देखता रहा—धीरे धीरे
अनगिनती पत्तों से लद, भर गयी झाड़ियाँ,
हरे-भरे टँग गये कई मखमली चँदोवे !
बेलें फैल गईं बल खा, आँगन में लहरा—
और सहारा लेकर बाड़े की टट्टी का
हरे-हरे सौ झरने फूट पड़े ऊपर को,—
मैं अवाक् रह गया, वंश कैसे बढ़ता है !
छोटे, तारों-से छितरे, फूलों के छींटे
झागों-से लिपटे लहरी श्यामल लतरों पर
सुन्दर लगते थे, मावस के हँसमुख नभ-से,
चोटी के मोती-से, आँचल के बूँटों-से !

ओह, समय पर उनमें कितनी फलियाँ टूटीं !
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ,—
पतली चौड़ी फलियाँ ! उफ, उनकी क्या गिनती !
लम्बी लम्बी अंगुलियों-सी, नन्हीं नन्हीं
तलवारों-सी, पन्ने के प्यारे हारों-सी,
झूठ न समझें, चन्द्र कलाओं-सी नित बढ़तीं,
सच्चे मोती की लड़ियों-सी ढेर ढेर खिल,
झुंड झुंड झिलमिल कर कचपचिया तारों-सी !
आः, इतनी फलियाँ टूटीं, जाड़ों भर खाईं,
सुबह शाम वे घर घर पकीं, पड़ोस पास के
जाने अनजाने सब लोगों में बँटवाईं,

वन्धु वांधवों, मित्रों, अभ्यागत, मँगतों ने
जी भर-भर दिन रात मुहल्ले भर ने खाईं !—
कितनी सारी फलियाँ, कितनी प्यारी फलियाँ !

यह धरती कितना देती है ! धरती माता
कितना देती है अपने प्यारे पुत्रों को !
नहीं समझ पाया था मैं उसके महत्त्व को,
वचपन में, छिः स्वार्थ लोभ वश पैसे वोकर !
रत्न प्रसविनी है वसुधा, अव समझ सका हूँ !
इसमें सच्ची समता के दाने वोने हैं,
इसमें जन की क्षमता के दाने वोने हैं,
इसमें मानव ममता के दाने वोने हैं—,
जिससे उगल सके फिर धूल सुनहली फसलें
मानवता की,—जीवन श्रम से हँसें दिशाएँ !—
हम जैसा बोएँगे वैसा ही पाएँगे !

['अतिमा' से]

चन्द्र लोक में प्रथम बार

चंद्र लोक में प्रथम बार,
मानव ने किया पदार्पण,
छिन्न हुए लो, देश काल के,
दुर्जय वाधा बंधन ।

दिग्विजयी मनु-सुत, निश्चय,
यह महत् ऐतिहासिक क्षण,
भू विरोध हों शांत
निकट आएँ सब देशों के जन ।

युग-युग का पौराणिक स्वप्न
हुआ मानव का संभव,
समारंभ शुभ नये चन्द्र-युग का
भू को दे गौरव !

फहराए ग्रह उपग्रह में
धरती का श्यामल अंचल,
सुख संपद् संपन्न जगत् में
बरसे जीवन-मंगल !

अमरीका सोवियत वनें
नव दिक् रचना के वाहन
जीवन पद्धतियों के भेद
समन्वित हों,—विस्तृत मन !

अणु-युग बने धरा जीवन हित
स्वर्ग सृजन का साधन,
मानवता ही विश्व सत्य
भू राष्ट्र करें आत्मार्पण !

धरा चन्द्र की प्रीति परस्पर
जगत प्रसिद्ध, पुरातन,
हृदय-सिन्धु में उठता
स्वर्गिक ज्वार देख चन्द्रानन !

['ऋता' से]

प्रश्न

१—कवि ने चींटी को किसका प्रतीक माना है ?

२—इस रचना में कवि का सर्वप्रथम ध्यान चींटी के पंक्तिवद्ध होकर चलने की ओर गया है। "वह है पिपीलिका पाँति" कह कर वह जीवन के किस आदर्श की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है ?

३—चींटी में किन गुणों का उल्लेख करके कवि उसे सुनागरिक कहता है ?

४—कवि ने वचपन में जो वीज वोये थे उनका वोना गलत क्यों था ?

५—"कवि जीवन के ५० वर्ष विता कर अव वृद्धावस्था के द्वार पर खड़ा है।" इस भाव को उसने किस प्रकार व्यक्त किया है ?

६—आँगन में निकले सेम के अंकुर कवि को कैसे दिखाई पड़े ?

७—छाता ताने उन अंकुरों को कवि जीवन की विजय-पताकाएँ क्यों कहता है ?

८—कवि धरती माता की उर्वरता को वचपन में क्यों नहीं समझ पाया ?

९—कवि ने धरती को रत्न-प्रसविनी क्यों कहा है ?

१०—मानवता की सुनहली फसल से कवि का क्या तात्पर्य है ?

११—चन्द्रलोक में मानव के प्रथम पदार्पण को कवि ने महत् ऐतिहासिक क्षण क्यों कहा है ?

अभ्यास

(१) पंत की कविताओं में नवीन अप्रस्तुओं की योजना वड़ा मार्मिक प्रभाव डालने वाली होती है। उनकी 'चींटी' शीर्षक रचना इन नवीन अप्रस्तुतों के प्रयोग से ही प्रभावोत्पादक वन गयी है। नीचे की सारणी में चींटियों की पंक्ति के लिए प्रयोग किया एक तथा चींटी के लिए प्रयोग किये गये तीन अप्रस्तुत लिखिए।

प्रस्तुत	अप्रस्तुत
चींटियों की पंक्ति	....
चींटी	१ ....
	२ ....
	३ ....

२—नीचे लिखे वाक्यों में कोष्ठक १, २ तथा ३ के सामने तीन-तीन विकल्प दिये गये हैं जिनमें से केवल एक-एक सही है। सही विकल्प को लिखिए।

(क) कवि द्वारा वचपन में वोयी गयी फसल नहीं उगी, क्योंकि—

(१) धरती बंजर थी।
कवि ने गलत बीज वोये थे।
कवि ने फसल को सींचा नहीं।

(ख) कवि चींटी को जीवन की अक्षय चिनगारी कहता है, क्योंकि वह—

(२) परिश्रमशील है।
आकार में छोटी होती है।
पंक्ति बना कर चलती है।

(ग) चन्द्रलोक में प्रथम वार मानव के पदार्पण करने के पश्चात् कवि चाहता है कि इस अणु-युग में—

(३) पृथ्वी स्वर्ग वन जाय।
मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त कर ले।
मनुष्य ग्रह-उपग्रह में वस जाय।

३—पंत की पढ़ी हुई कविताओं से ऐसी पंक्तियों का चयन कीजिए जिन में उन्होंने लोक-मंगल की कामना व्यक्त की है।

४—निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए—

(क) वह समस्त पृथ्वी पर निर्भय विचरण करती,
श्रम में तन्मय, वह जीवन की चिनगी अक्षय।

(ख) मैं हताश हो, बाट जोहता रहा, दिनों तक
बाल-कल्पना के अपलक पाँवड़े बिछा कर।

(ग) इसमें मानव ममता के दाने बोने हैं—जिससे उगल सके फिर
धूल सुनहली फसलें मानवता की।

(घ) अणु युग बने धरा जीवन हित,
स्वर्ग सृजन का साधन।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म सन् १९०७ ई० में होली के दिन फर्रुखाबाद (उ० प्र०) में हुआ था। इनके पिता श्री गोविन्दसहाय वर्मा इन्दौर के एक कालेज में अध्यापक थे तथा माता सरल हृदया, धर्म-परायणा महिला थीं। महादेवी बड़ी कुशाग्रबुद्धि बालिका थीं और बचपन से ही माँ से रामायण-महाभारत की कथाएँ सुनते रहने के कारण इनके मन में साहित्य के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया था। फलतः मौलिक काव्य-रचना इन्होंने बहुत छोटी आयु से आरम्भ कर दी थी। इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० किया। दर्शन, संगीत तथा चित्रकला में इनकी विशेष अभिरुचि है। भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मभूषण' अलंकार से सम्मानित किया है। सम्प्रति ये प्रयाग महिला विद्यापीठ की उप-कुलपति हैं।

महादेवीजी आधुनिक हिन्दी साहित्य के निर्माताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं। प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी छायावाद-युग के चार महान कवियों को वृहत् चतुष्टय के नाम से जाना जाता है।

इनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं—नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, दीपशिखा, सप्तपर्णा तथा हिमालय।

साहित्य को इनका योगदान मुख्यतः एक कवि के रूप में है किन्तु इन्होंने प्रौढ़ गद्य लेखन द्वारा हिन्दी-भाषा को सजाने-सँवारने तथा अर्थ-गाम्भीर्य प्रदान करने में जो प्रयत्न किया है, वह भी प्रशंसनीय है।

महादेवीजी ने सरस गीतों की रचना की है, जिनमें वेदना की मार्मिक अभि-व्यक्ति हुई है। अपने गीतों में इन्होंने असीम, अगोचर, परोक्ष प्रिय (ईश्वर, ब्रह्म) के प्रति प्रेम का निवेदन किया है। बौद्धों के दुःखवाद तथा करुणावाद का इन पर बहुत प्रभाव है। इन्होंने अपने गीतों में स्निग्ध और सरल, तत्सम प्रधान खड़ी बोली का प्रयोग किया है। साहित्य तथा संगीत के मणि-कांचन संयोग द्वारा 'गीत' की विधा को विकास की चरम सीमा तक पहुँचा देने का श्रेय महादेवी को ही है।

हिमालय से

हे चिर महान् !
यह स्वर्णरश्मि छू श्वेत भाल,
बरसा जाती रंगीन हास;
सेली बनता है इन्द्रधनुष,
परिमल मल मल जाता बतास !
पर रागहीन तू हिमनिधान !

नभ में गर्वित झुकता न शीश,
पर अंक लिये है दीन क्षार;
मन गल जाता नत विश्व देख,
तन सह लेता है कुलिश-भार !
कितने मृदु कितने कठिन प्राण !

टूटी है तेरी कब समाधि,
झंझा लौटे शत हार-हार,
वह चला दृगों से किन्तु नीर;
सुनकर जलते कण की पुकार !
सुख से विरक्त दुख में समान !

मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप;
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करुणा की थाह नाप !
उर में पावस दृग में विहान !

['सान्ध्य गीत' से]

वर्षा सुन्दरी के प्रति

रूपसि तेरा घन-केश-पास !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश !

नभ-गङ्गा की रजतधार में,
धो आई क्या इन्हें रात ?
कम्पित हैं तेरे सजल अङ्ग,
सिहरा सा तन हे सद्यस्नात !
भीगी अलकों के छोरों से
चूतीं बूँदें कर विविध लास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

सौरभ भीना झीना गीला
लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल;
चल अंचल से झर झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल;
दीपक से देता बार-बार
तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
बक-पाँतों का अरविन्द-हार;
तेरी निश्वासें छू भू को
बन बन जातीं मलयज बयार;
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती-जगती की मूक प्यास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल;
झुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा दे ना, बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
['नीरजा' से]

अधिकार

वे मुस्काते फूल, नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप, नहीं
जिनको भाता है बुझ जाना;
वे नीलम के मेघ, नहीं—
जिनको है घुल जाने की चाह,
वह अनन्त ऋतुराज, नहीं—
जिसने देखी जाने की राह;

वे सूने से नयन, नहीं—
जिनमें बनते आँसू मोती,
वह प्राणों की सेज, नहीं—
जिनमें बेसुध पीड़ा सोती;
ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद !

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !

प्रश्न

१—'हे चिर महान्' कविता में हिमालय के लिए कौन-कौन से विशेषण कवयित्री ने प्रयुक्त किये हैं ? उनसे हिमालय के किन गुणों पर प्रकाश पड़ता है ?

२—'अधिकार' शीर्षक कविता में कवयित्री की क्या चाह प्रकट हुई है ? अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए।

३—'वर्षा सुन्दरी के प्रति' कविता के आधार पर वर्षा का वर्णन कीजिए।

४—'बक-पाँतों का अरविन्द हार' से कवयित्री का क्या आशय है ? उसे स्पष्ट कीजिए।

अभ्यास

१—निम्नलिखित अंशों का आशय स्पष्ट कीजिए—
(क) सेली बनता है इन्द्र धनुष।
(ख) कितने मृदु कितने कठिन प्राण।
(ग) जलना जाना .... स्वाद।
(घ) सौरभ भीना .... दुकूल।

२—'जगती जगती की मूक प्यास' में कौन-सा अलंकार है ? उसकी परिभाषा तथा दो अन्य उदाहरण दीजिए।

३—नीचे दिये गये अप्रस्तुतों के प्रस्तुत बताइए—
अंचल, मृदु अंजन, स्वर्ण फूल

४—नीचे दिये गये उपमेय तथा उपमानों का क्रम सही करके लिखिए :

मेघ	मोती
आँसू	दीप
तारा	नीलम

रामकुमार वर्मा

रामकुमार वर्मा का जन्म सागर (मध्य प्रदेश) जनपद के गोपालगंज ग्राम में सन् १६०५ ई० में हुआ था। रावर्टसन कालेज जवलपुर तथा प्रयाग-विश्वविद्यालय में इन्होंने शिक्षा पायी। सन् १६२६ ई० में प्रयाग-विश्वविद्यालय की एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर इन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया। प्रयाग-विश्वविद्यालय में ये अध्यापन कार्य करते रहे। सन् १६४० ई० में नागपुर विश्वविद्यावय ने इन्हें डाक्टर आफ फिलासफी की उपाधि प्रदान की। हिन्दी के प्रोफेसर होकर ये सोवियत यूनियन और श्रीलंका भी गये। भारत-सरकार ने इन्हें 'पद्म भूषण' की उपाधि से और हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्य-वाचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया। इन्होंने देव-पुरस्कार तथा कालिदास-पुरस्कार भी प्राप्त किये। सन् १६६६ ई० में प्रयाग-विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के पद से इन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

चित्ररेखा, चन्द्रकिरण, संकेत, आकाश गंगा इनके काव्य-संग्रहण हैं तथा एकलव्य और उत्तरायण प्रवंधकाव्य हैं।

भारतीय संस्कृति के प्रति वर्माजी की विशेष आस्था है। प्रकृति का सौन्दर्य भी वर्माजी को सदैव आकर्षित करता है। इनकी रचनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य के वड़े मार्मिक चित्र मिलते हैं। प्रकृति-सौन्दर्य से इन्हें आध्यामित्क साधना की प्रेरणा मिलती रही। इनके गीत संगीतात्मकता और चरम सीमा पर पहुँचे भावों के आवेग से पूर्ण हैं। इनका अलंकार-विधान नवीन तथा भावानुकूल है। नवीन उपमाओं के सफल प्रयोग, चित्रात्मकता, कोमलकान्त पदावली तथा भाषा की स्वच्छता और सरलता इनकी कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

———

निर्झर से

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !
इस एकान्त प्रान्त-प्राङ्गण में
किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?
अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर !

अपना ऊँचा स्थान त्यागकर,
क्यों करते हो अधःपतन ?
कौन तुम्हारा वह प्रेमी है,
जिसे खोजते हो वन - वन ?

विरह - व्यथा में अश्रु वहाकर,
जलमय कर डाला सब तन !
क्या धोने को चले स्वयं,
अविदित प्रेमी के पद - रज - कन ?

लघु पाषाणों के टुकड़े भी,
तुमको देते हैं ठोकर !
क्षणभर ही विचलित होकर,
कम्पित होते हो गति खोकर।

लघु लहरों के कम्पित कर से,
करते उत्सुक आलिंगन।
कौन तुम्हें पथ बतलाता है,
मौन खड़े हैं सब तरुगन ?

अविचलन पल, जल का छल-छल,
गिरिपर गिर-गिरकर कल-कल स्वर।

पल - पल में प्रेमी के मन में,
गूँजे ए कातर निर्झर !

['अंजलि' से]

क्या गाऊँ ?

प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊँ ?
जिस ध्वनि में तुम वसे उसे,
जग के कण कण में क्या विखराऊँ ?
शब्दों के अधखुले द्वार से
अभिलाषाएँ निकल न पातीं !
उच्छ्वासों के लघु लघु पथ पर,
इच्छाएँ चल कर थक जातीं।
हाय, स्वप्न-संकेतों से मैं,
कैसे तुमको पास बुलाऊँ ?
प्रिय, तुम भूले मैं क्या गाऊँ ?
जुही सुरभि की एक लहर से,
निशा वह गयी डूबे तारे,
अश्रु-बिन्दु में डूब - डूबकर,
दृग-तारे ये कभी न हारे।
दुख की इस जागृति में कैसे,
तुम्हें जगाकर मैं सुख पाऊँ ?
प्रिय, तुम भूले मैं क्या गाऊँ ?

प्रश्न

१—निर्झर को देखकर कवि के मन में क्या जिज्ञासा उत्पन्न हुई ?
२—निर्झर वन-वन में किसे खोज रहा है ?
३—निर्झर के शरीर को जलमय क्यों कहा गया है ?
४—लघु पाषाणों के टुकड़े भी तुमको देते हैं ठोकर से कवि का क्या तात्पर्य है ?

५–कवि अपनी स्वर-लहरी को संसार के कण-कण में क्यों नहीं बिखराना चाहता ?
६–कवि अपनी अभिलाषाओं को क्यों नहीं व्यक्त कर पाता ?
७–'दुख की इस जागृति' से कवि का क्या तात्पर्य है ?

अभ्यास

१–"अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर" गीत के सम्बन्ध में कुछ तथ्य नीचे दिये जा रहे हैं। इनमें से कुछ सही हैं और कुछ सही नहीं हैं। जो तथ्य सही हों उनके सामने बने कोष्ठक में सही (✓) का चिह्न लगाइए—

(क) कवि के मन में उसके स्वरूप के सम्बन्ध में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है जिसको निर्झर अपना सुमधुर संगीत सुनाता है······ ( )
(ख) निर्झर किसी अविदित प्रेमी से प्रेम करता है और उसी के वियोग में आँसू बहाकर उसने अपने शरीर को जलमय कर लिया है······ ( )
(ग) निर्झर बिना विचलित हुए अपने मार्ग पर अपनी स्वाभाविक गति से प्रवाहित होता रहता है······ ( )
(घ) निर्झर के किनारे खड़े वृक्ष उसका मार्ग प्रदर्शन करते हैं······ ( )

२–निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए—

(क) हाय स्वप्न संकेतों से मैं कैसे तुमको पास बुलाऊँ।
(ख) जुही सुरभि की एक लहर से निशा बह गयी डूबे तारे।
(ग) दुख की इस जागृति में कैसे तुम्हें जगा कर मैं सुख पाऊँ।
(घ) लघु पाषाणों के टुकड़े भी तुमको देते हैं ठोकर।

३–छायावादी रचना में कवि प्रकृति के सौन्दर्यमय स्वरूप में अपनी आत्मचेतना के समान एक चेतन सत्ता की छाया देखता है। रामकुमार वर्मा की रचनाओं से ऐसी तीन पंक्तियाँ चुनकर लिखिए जिनमें कवि ने चेतन सत्ता की छाया का आभास दिया हो।

४–मानवीकरण से आप क्या समझते हैं ? उन पंक्तियों को छाँटकर लिखिए जिनमें प्रकृति का मानवीकरण किया गया हो।

———

रामनरेश त्रिपाठी

रामनरेश त्रिपाठी का जन्म सन् १८८६ ई० में जिला जौनपुर (उ० प्र०) के अन्तर्गत कोइरीपुर ग्राम में एक साधारण कृषक परिवार में हुआ था। केवल नवीं कक्षा तक स्कूल में पढ़ने के पश्चात् इनकी पढ़ाई छूट गयी। बाद में इन्होंने स्वतन्त्र रूप से अध्ययन किया तथा साहित्य-साधना को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। सन् १९६२ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया।

त्रिपाठीजी मननशील, विद्वान तथा परिश्रमी थे। काव्य, कहानी, नाटक, निवन्ध, आलोचना तथा लोक-साहित्य आदि विषयों पर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं---पथिक, मिलन और स्वप्न (खण्ड काव्य), मानसी (स्फुट कवितासंग्रह), कविता-कौमुदी, ग्राम्य-गीत (सम्पादित), गोस्वामी तुलसीदास और उनकी कविता (आलोचना)। त्रिपाठीजी आदर्शवादी थे। इनकी रचनाओं में नवीन आदर्श और नवयुग का संकेत है। इनके द्वारा रचित 'पथिक' और 'मिलन' नामक खण्डकाव्य अत्यन्त लोकप्रिय हुए। इनकी रचनाओं की विशेषता यह है कि उनमें राष्ट्र-प्रेम तथा मानव-सेवा की उत्कृष्ट भावनाएँ बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित हुई हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा और पवित्र-प्रेम के सुन्दर चित्र भी इन्होंने अपनी कविताओं में चित्रित किये हैं।

त्रिपाठीजी की भाषा सरल एवं सरस खड़ी बोली है। उसमें माधुर्य और ओज है। शैली अत्यन्त प्रवाहपूर्ण है।

सत्कर्त्तव्य

जग में सचर-अचर जितने हैं, सारे कर्म-निरत हैं।
धुन है एक-न-एक सभी को, सबके निश्चित व्रत हैं।
जीवन-भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है॥ १॥

सिंधु-विहंग तरंग-पंख को फड़काकर प्रतिक्षण में।
है निमग्न नित भूमि-अंड के सेवन में, रक्षण में।
कोमल मलय पवन घर-घर में सुरभि बाँट आता है।
शस्य सींचने घन जीवन धारण कर नित जाता है॥ २॥

रवि जग में शोभा सरसाता, सोम सुधा बरसाता।
सब हैं लगे कर्म में, कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता।
है उद्देश्य नितांत तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का।
उसी पूर्ति में वह करता है अन्त कर्ममय तन का॥ ३॥

तुम मनुष्य हो, अमित बुद्धि-बल-विलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्देश्य-रहित है जग में, तुमने कभी विचारा?
बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्त्तव्य समाप्त कर लिया तुमने निज जीवन में?॥ ४॥

जिस पर गिरकर उदर-दरी से तुमने जन्म लिया है।
जिसका खाकर अन्न, सुधा-सम नीर, समीर पिया है।
वह सनेह की मूर्ति दयामयि माता तुल्य मही है।
उसके प्रति कर्त्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है?॥ ५॥

तुम्हें उचित था, तुम उदार वनकर घर-घर में जाते,
अमित प्रेम-निधि एक-एक प्राणी को मुक्त लुटाते।
किन्तु कृपण वन सव समेट, सानन्द स्वयं रहते हो,
इस पर भी तुम स्वार्थ-ग्रसित, कुत्सित जग को कहते हो ॥ ६ ॥

केवल अपने लिए सोचते, मौज भरे गाते हो।
पीते, खाते, सोते, जगते, हँसते, सुख पाते हो।
जग से दूर स्वार्थ-साधन ही सतत तुम्हारा यश है।
सोचो, तुम्हीं, कौन अग-जग में तुम-सा स्वार्थ विवश है ? ॥ ७ ॥

आवश्यकता की पुकार को श्रुति ने श्रवण किया है ?
कहो, करों ने आगे वढ़ किसको साहाय्य दिया है ?
आर्तनाद तक कभी पदों ने क्या तुमको पहुँचाया ?
क्या नैराश्य-निमग्न जनों को तुमने कंठ लगाया ? ॥ ८ ॥

यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है।
दुख है, प्रश्न कठोर देखकर होती बुद्धि विकल है।
किन्तु स्वात्म वल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से।
हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-वल से ॥ ९ ॥

परम विचित्र यंत्र यह जग है उसी शक्ति से चलता।
मत करना अभिमान मिले जो तुमको कभी सफलता।
यद्यपि सव जग का हित-चिन्तन सवको आवश्यक है।
पर प्रत्येक मनुज पर पहला देश-जाति का हक है ॥ १० ॥

पैदा कर जिस देश-जाति ने तुमको पाला-पोसा।
किये हुए है वह निज-हित का तुमसे वड़ा भरोसा।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा ॥ ११ ॥
['पथिक']

स्वदेश-प्रेम

अतुलनीय जिनके प्रताप का,
साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर।
घूम-घूम कर देख चुका है,
जिनकी निर्मल कीर्ति निशाकर॥
देख चुके हैं जिनका वैभव,
ये नभ के अनन्त तारागण।
अगणित वार सुन चका है नभ,
जिनका विजय-घोष रण-गर्जन॥ १॥

शोभित है सर्वोच्च मुकुट से,
जिनके दिव्य देश का मस्तक।
गूंज रही हैं सकल दिशाएँ,
जिनके जय-गीतों से अव तक॥
जिनकी महिमा का है अविरल,
साक्षी सत्य-रूप हिम-गिरि-वर।
उतरा करते थे विमान-दल,
जिससे विस्तृत वक्षःस्थल पर॥ २॥

सागर निज छाती पर जिनके,
अगणित अर्णव-पोत उठाकर।
पहुँचाया करता था प्रमुदित,
भूमंडल के सकल तटों पर॥
नदियाँ जिसकी यश-धारा-सी,
बहती हैं अव भी निशि-वासर।
ढूंढो, उनके चरण-चिह्न भी,
पाओगे तुम इनके तट पर॥ ३॥

विषुवत्-रेखा का वासी जो,
जीता है नित हाँफ-हाँफ कर।
रखता है अनुराग अलौकिक,
वह भी अपनी मातृ-भूमि पर॥
ध्रुव-वासी, जो हिम में तम में,
जी लेता है काँप-काँप कर।
वह भी अपनी मातृ-भूमि पर,
कर देता है प्राण निछावर॥ ४॥

तुम तो, हे प्रिय बंधु, स्वर्ग-सी,
सुखद, सकल विभवों की आकर।
धरा-शिरोमणि मातृ-भूमि में,
धन्य हुए हो जीवन पाकर॥
तुम जिसका जल अन्न ग्रहणकर,
बड़े हुए लेकर जिसकी रज।
तन रहते कैसे तज दोगे,
उसको, हे वीरों के वंशज॥ ५॥

जब तक साथ एक भी दम हो,
हो अवशिष्ट एक भी धड़कन।
रखो आत्म-गौरव से ऊँची—
पलकें, ऊँचा सिर, ऊँचा मन॥
एक बूंद भी रक्त शेष हो,
जब तक मन में हे शत्रुंजय!
दीन वचन मुख से न उचारो,
मानो नहीं मृत्यु का भी भय॥ ६॥

निर्भय स्वागत करो मृत्य का,
मृत्यु एक है विश्राम-स्थल।
जीव जहाँ से फिर चलता है,
धारण कर नव जीवन-संवल॥
मृत्यु एक सरिता है, जिसमें,
श्रम से कातर जीव नहाकर।
फिर नूतन धारण करता है,
काया-रूपी वस्त्र वहाकर॥ ७ ॥

सच्चा प्रेम वही है जिसकी—
तृप्ति आत्म-वलि पर हो निर्भर।
त्याग विना निष्प्राण प्रेम है,
करो प्रेम पर प्राण निछावर॥
देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित॥ ८ ॥
['स्वप्न' से]

प्रश्न

१—'तुच्छ पत्ता भी स्वकर्म में तत्पर है,' कहकर कवि हमसे क्या कहना चाहता है ?
२—'संसार में चर-अचर सभी कर्म निरत हैं,' इसकी पुष्टि कवि ने किस प्रकार की है ?
३—जन्म-भूमि को माता-तुल्य मानना ही हमारा धर्म है। क्यों ?
४—मातृ-भूमि के प्रति हमारे क्या कर्त्तव्य हैं ? इस कविता के आधार पर निश्चित कीजिए।
५—संसार को परीक्षास्थल मानने से कवि का क्या आशय है ? स्पष्ट कीजिए।

६–कवि ने हमारा प्रथम सत्कर्त्तव्य क्या बताया है और क्यों ?

७–स्वदेश-प्रेम कविता में कवि ने अतीत की किन गौरवपूर्ण घटनाओं का उल्लेख किया है ?

८–मातृभूमि के प्रति मनुष्य में स्वाभाविक प्रेम होता है, स्वदेश-प्रेम कविता से इसके पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत कीजिए ।

९–'त्याग के बिना प्रेम निष्प्राण है,' कथन की सार्थकता पर प्रकाश डालिए ?

अभ्यास

१–भाव स्पष्ट कीजिए—

(अ) सिंधु-विहंग............रक्षण में ।

(ब) किन्तु स्वात्म बल-विज्ञ............मेधा-वल से ।

(स) मृत्यु एक सरिता............वस्त्र बहाकर ।

२–उत्तर पूरा कीजिए—

(अ) मातातुल्य मही के प्रति कर्त्तव्य करने हेतु तुम्हें उचित था कि.........

....

(ब) पर प्रत्येक मनुज पर पहला देशजाति का हक है, क्योंकि...............

....

(स) निर्भय स्वागत करो मृत्यु का क्योंकि..............................

....

३–'सत्कर्त्तव्य' और 'स्वदेश-प्रेम' शीर्षक कविताओं की जिन पंक्तियों ने आपको प्रभावित किया हो, उन्हें कण्ठस्थ कीजिए ।

४–स्वदेश-प्रेम कविता से रूपक अलंकार के तीन उदाहरण लिखिए ।

———

माखनलाल चतुर्वेदी

माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म सन् १८८६ ई० में मध्य प्रदेश में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० नन्दलाल चतुर्वेदी था। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने घर पर ही संस्कृत, बंगाल, गुजराती, अंग्रेजी आदि का अध्ययन किया। इन्होंने कुछ दिन अध्यापन-कार्य भी किया। सन् १९१३ ई० में वे सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'प्रभा' के सम्पादक नियुक्त हुए। श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की प्रेरणा तथा साहचर्य के कारण ये राष्ट्रीय अन्दोलनों में भाग लेने लगे। इन्हें कई वार जेल यात्रा करनी पड़ी। पंडितजी सन् १९४३ ई० में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष हुए। ८० वर्ष की अवस्था में ३० जनवरी, १९६८ को इनका स्वर्गवास हो गया।

पंडितजी के निम्नलिखित कविता-संग्रह हैं—हिम किरीटिनी, हिमतरंगिनी, माता, युगचरण, समर्पण, वेणु लो गूंजे धरा। इनके अतिरिक्त चतुर्वेदीजी ने नाटक, कहानी, निबन्ध-संस्मरण भी लिखे हैं। इनके भाषणों के 'चिन्तक की लाचारी' तथा 'आत्म दीक्षा' नामक संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं।

चतुर्वेदीजी की प्रसिद्धि कवि रूप में ही अधिक है किन्तु ये एक पत्रकार, समर्थ निबन्धकार और सिद्धहस्त सम्पादक भी थे। इनका 'साहित्य-देवता' गद्य-काव्य की एक अमर कृति है।

इनके काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीयतावादी है, जिसमें त्याग, बलिदान, कर्तव्य-भावना और समर्पण का भाव है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को स्वर देने वालों में इनका प्रमुख स्थान रहा है। इनकी कविता में यदि कहीं ज्वालामुखी की तरह धधकता हुआ अन्तर्मन है तो कहीं पौरुष की हुंकार और कहीं करुणा से भरी मनुहार है। इनकी भाषा में बोल-चाल के शब्दों के साथ-साथ उर्दू-फारसी के शब्द भी हैं। उसमें एक विचित्र प्रकार की मिठास है। इनकी छन्द योजना में भी नवीनता है। चतुर्वेदीजी की कविता में भाव-पक्ष की कमी को कला-पक्ष पूर्ण कर देता है।

हिन्दी की साहित्य-सेवा के उपलक्ष्य में सागर विश्वविद्यालय ने इन्हें मानद डी० लिट्० तथा भारत सरकार ने 'पद्म-भूषण' की उपाधियों से अलंकृत किया था।

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,

मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।

['युगचरण' से]

जवानी

प्राण अन्तर में लिये, पागल जवानी !
कौन कहता है कि तू
विधवा हुई, खो आज पानी ?

चल रहीं घड़ियाँ,
चले नभ के सितारे,
चल रहीं नदियाँ,
चले हिम-खण्ड प्यारे;
चल रही है साँस,
फिर तू ठहर जाये ?

दो सदी पीछे कि
तेरी लहर जाये ?

पहन ले नर-मुंड-माला,
उठ, स्वमुंड सुमेरु कर ले,
भूमि-सा तू पहन बाना आज धानी
प्राण तेरे साथ हैं, उठ री जवानी !

द्वार बलि का खोल
चल, भूडोल कर दें
एक हिम-गिरि एक सिर
का मोल कर दें,
मसल कर, अपने
इरादों सी, उठा कर,
दो हथेली हैं कि
पृथ्वी गोल कर दें ?

रक्त है ? या है नसों में क्षुद्र पानी !
जाँच कर, तू सीस दे-देकर जवानी ?

वह कली के गर्भ से फल—
रूप में, अरमान आया !
देख तो मीठा इरादा, किस
तरह, सिर तान आया !
डालियों ने भूमि रुख लटका
दिये फल, देख आली !
मस्तकों को दे रही
संकेत कैसे, वृक्ष-डाली !

फल दिये ? या सिर दिये ? तरु की कहानी—
गूँथकर युग में, वताती चल जवानी !

श्वान के सिर हो—
चरण तो चाटता है !
भोंक ले—क्या सिंह
को वह डाँटता है ?
रोटियाँ खायीं कि
साहस खा चुका है,
प्राणि हो, पर प्राण से
वह जा चुका है।

तुम न खेलो ग्राम-सिंहों में भवानी !
विश्व की अभिमान मस्तानी जवानी !

ये न मग हैं, तव
चरण की रेखियाँ हैं,
वलि दिशा की अमर
देखा - देखियाँ हैं।
विश्व पर, पद से लिखे
कृति लेख हैं ये,
धरा तीर्थों की दिशा
की मेख हैं ये।

प्राण-रेखा खींच दे, उठ वोल रानी,
री मरण के मोल की चढ़ती जवानी।

टूटता - जुड़ता समय—
'भूगोल' आया,

गोद में मणियाँ समेट
'खगोल' आया,
क्या जले बारूद ?—
हिम के प्राण पाये !
क्या मिला ? जो प्रलय
के सपने न आये।
धरा ?—यह तरबूज
है; दो फाँक कर दे,

चढ़ा दे स्वातन्त्र्य-प्रभु पर अमर पानी।
विश्व माने—तू जवानी है, जवानी !

लाल चेहरा है नहीं—
फिर लाल किसके ?
लाल खून नहीं ?
अरे, कंकाल किसके ?
प्रेरणा सोयी कि
आटा-दाल किसके ?
सिर न चढ़ पाया
कि छाप-माल किसके ?

वेद की वाणी कि हो आकाश-वाणी,
धूल है जो जग नहीं पायी जवानी।

विश्व है असि का ?—
नहीं संकल्प का है;
हर प्रलय का कोण
काया-कल्प का है;
फूल गिरते, शूल
शिर ऊँचा लिये हैं;

रसों के अभिमान
को नीरस किये हैं!

खून हो जाये न तेरा देख, पानी,
मरण का त्योहार, जीवन की जवानी।

['हिमकिरीटिनी' से]

प्रश्न

१–पुष्प की अभिलाषा कविता में फूल को किन बातों की चाह नहीं है और क्यों?

२–पुष्प को मातृ-भूमि के लिए शीश कटाने हेतु जाने वालों के पथ पर बिछने में क्यों आनन्द है?

३–पुष्प की अभिलाषा कविता में कवि हमें क्या उद्बोधन देना चाहता है?

४–जवानी कविता में कवि ने युवकों को क्या प्रेरणा दी है?

५–मसलकर··· ················गोल कर दें, कहने में जो भाव-सौन्दर्य है, उसे स्पष्ट कीजिए।

६–साहसहीन युवक को ग्राम-सिंह कहकर सम्बोधित करने में जो व्यंग्य है, उसे समझाइए।

७–विश्व असि का नहीं, तो किसका है? कविता के आधार पर इस कथन का औचित्य सिद्ध कीजिए।

अभ्यास

१–भाव स्पष्ट कीजिए—

(अ) 'मुझे तोड़··· ······अनेक'

(ब) 'चल रही है साँस··· ··· ···लहर जाये'

(स) 'वह कली के··· ······वृक्ष डाली'

(द) 'चढ़ा दे स्वातन्त्र्य प्रभु··· ··· ···अमर पानी'

२–'जवानी' कविता का सौन्दर्य उसकी फड़कती ओजपूर्ण शब्द-शैली में प्रस्फुटित हुआ है, कविता से उद्धरण देते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए—

३–निम्न पंक्तियों में निहित सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए।

(अ) पहन ले.........सुमेरु कर ले।

(ब) मसलकर.........गोल कर दें।

(स) देख लो मीठा इरादा.........तान आया।

४–अलंकार बताइए—

लाल चेहरा है नहीं, फिर लाल किसके

५–'पुष्प की अभिलाषा' कविता को कण्ठस्थ कीजिए।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म सन् १८९८ ई० में उज्जैन के निकट भुजालपुर नामक गाँव में हुआ था। नवीनजी के पिता का नाम पं० यमुना दास था। ये साधारण स्थिति के ब्राह्मण थे। इनके पुत्र 'नवीन' सरल प्रकृति के साथ ही बड़े अध्यवसायी भी थे।

नवीन जी कानपुर में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आये और 'प्रताप' के सहकारी सम्पादक के रूप में कार्य करने लगे। यहीं से इनके राजनीतिक जीवन का आरम्भ हुआ, जिसके फलस्वरूप कई वार इन्होंने जेल यात्राएँ कीं। नवीनजी कई वर्ष तक 'प्रभा' के भी सम्पादक रहे। इनके हृदय में राष्ट्र और राष्ट्रभाषा के लिए अपार प्रेम था। सन् १९६० ई० में इनका स्वर्गवास हो गया।

नवीनजी की प्रमुख कृतियाँ हैं—उर्मिला (महाकाव्य), प्राणार्पण (खण्ड काव्य), कुंकुम, अपलक, क्वासि, विनोबास्तवन, रश्मिरेखा तथा हम विष पायी जनम के (सभी कविता-संग्रह)

नवीनजी सहृदय तथा सहिष्णु थे। भाषण-कला में पटु और मधुर गायक थे। इनके स्वर में ओजस्विता थी, इसलिए इनकी अधिकांश रचनाओं में राष्ट्रीय जागरण के बड़े ओजस्वी भाव होते हैं।

इनकी कविता में राष्ट्रीयता, देश-प्रेम और मानव-सौन्दर्य की भावना की प्रधानता है। इसीलिए भारत के पूर्व सन्त, हिमालय, हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के वासी इनकी कविता के विषय हैं।

नवीनजी की भाषा भावानुकूल है और उसमें तत्सम शब्दों की प्रधानता है।

हिन्दुस्थान हमारा है !

कोटि-कोटि कंठों से निकली आज यही स्वर धारा है--
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है॥

(१)

जिस दिन सबसे पहले जागे, नवल सृजन के स्वप्न घने,
जिस दिन देश-काल के दो-दो, विस्तृत विमल वितान तने,--
जिस क्षण नभ में तारे छिटके, जिस दिन सूरज-चाँद बने,—
तब से है यह देश हमारा, यह अभिमान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

(२)

जब कि घटाओं ने सीखा था सबसे पहले घहराना,—
पहले पहल प्रभंजन ने जब सीखा था कुछ हहराना,—
जब कि जलधि सब सीख रहे थे सबसे पहले लहराना,—
उसी अनादि-आदि क्षण से यह जन्म-स्थान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

(३)

जिस क्षण से जड़ रजकण गतिमय होकर जंगम कहलाए,—
जब विहँसी थी प्रथम ऊषा वह, जब कि कमल-दल मुस्काए,—
जब मिट्टी में चेतन चमका, प्राणों के झोंके आए,—
है तब से यह देश हमारा, यह मन-प्राण हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

(४)

यहाँ प्रथम मानव ने खोले, निंदियारे लोचन अपने !
इसी नभ तले उसने देखे, शत-शत नवल सृजन-सपने,
यहाँ उठे 'स्वाहा' ! के स्वर, औ यहाँ 'स्वधा' के मंत्र बने !
ऐसा प्यारा देश पुरातन, ज्ञान-निधान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

(५)

सतलज, व्यास, चिनाव, वितस्ता, रावी, सिंधु तरंगवती,—
यह गंगा माता, यह यमुना गहर, लहर-रस-रंगवती,—
ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, कावेरी, वत्सलता-उत्संग-मती,—
इनसे प्लावित देश हमारा, यह रसखान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

(६)

विंध्य, सतपुड़ा, नागा, खसिया, ये दो औघट घाट महा,—
भारत के पूरव-पश्चिम के, ये दो भीम कपाट महा !
तुंग शिखर, चिर अटल हिमालय; है पर्वत-सम्राट् यहाँ !
यह गिरिवर वन नया युगों से, विजय-निशान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(७)

क्या गणना है, कितनी लंवी हम सवकी इतिहास लड़ी ?
हमें गर्व है कि है वहुत ही गहरे अपनी नींव पड़ी।
हमने वहुत वार सिरजीं हैं कई क्रान्तियाँ वड़ी-वड़ी,
इतिहासों ने किया सदा ही अतिशय मान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(८)

है आसन्न-भूत अति उज्ज्वल, है अतीत गौरवशाली,
औ' छिटकी है वर्तमान पर, बलि के शोणित की लाली,
नव ऊषा-सी विजय हमारी, विहँस रही है मतवाली !
हम मानव को मुक्त करेंगे, यही विधान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

(९)

गरज उठे चालीस कोटि जन, सुन ये वचन उछाह भरे,
काँप उठे प्रतिपक्षी जनगण, उनके अंतस्तल सिहरे ;
आज नये युग के नयनों से, ज्वलित अग्नि के पुंज झरे ;
कौन सामने आयेगा ? यह देश महान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

['अनिकेतन' से]

प्रश्न

१–हमें अपने देश पर अभिमान है, क्यों ?
२–भारत का अस्तित्व, इस कविता में कब से बताया गया है ?
३–भारत को ज्ञान-निधान कह कर पुकारने का औचित्य बताइए।
४–यह रसखान हमारा है, कहने में कवि का क्या भाव है ?
५–हम मानव को मुक्त करेंगे यही विधान हमारा है, से कवि का क्या आशय है ?
६–हमें गर्व है कि बहुत ही गहरे अपनी नींव पड़ी, इस पंक्ति का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

अभ्यास

१—निम्नलिखित का भाव स्पष्ट कीजिए—

(अ) 'यहाँ प्रथम मानव ने खोले निंदियारे लोचन अपने'

(ब) 'इतिहासों ने किया सदा ही अतिशय मान हमारा है'

(स) 'है आसन्न भूत अति उज्ज्वल, है अतीत गौरवशाली'

२—रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

'हमारे देश की नदियों में वत्सलता का भाव है, कवि का वह कहना उचित ही है, क्योंकि हम नदियों को.. कहकर पुकारते हैं जैसे..

३—'औ छिटकी है वर्तमान पर बलि के शोणित की लाली', कहने में भाव चित्रण का जो सौन्दर्य है उस पर प्रकाश डालिए।

४—जयशंकर 'प्रसाद' की निम्मांकित पक्तियों के भाव साम्य की पंक्तियाँ इस कविता में से ढूंढकर लिखिए।

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहिनाया हीरकहार।
जगे हम लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक।
व्योमतम पुँज हुआ तव नाश, अखिल संसृति हो उठी अशोक॥

५—हमें अपने देश पर अभिमान है, क्योंकि वह तब से अस्तित्व है, जब से सूरज, चाँद और सितारे बने हैं। वह तब से हमारा जन्म-स्थल है, जब सागर सर्वप्रथम लहराना सीख रहे थे।
इसी प्रकार देश की अन्य विशेषताओं का वर्णन इस कविता के आधार पर कीजिए।

६—इस कविता का प्रथम, द्वितीय, पंचम और सप्तम पद कण्ठस्थ कीजिए।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

'दिनकर' का जन्म सन् १६०८ ई० में बिहार प्रान्त के मुंगेर जिले के सिमरिया गाँव में हुआ था। इनके पिता अत्यन्त साधारण स्थिति के किसान थे। 'दिनकर' जव केवल दो साल के थे, तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया था। इनकी विधवा माता ने इनकी शिक्षा का प्रवन्ध किया। पटना विश्वविद्यालय से सन् १६३२ ई० में इन्होंने वी० ए० (आनर्स) की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। ये बड़े मेधावी थे। छात्र-जीवन से ही इनमें कविता के संस्कार अंकुरित हो गये थे। हाई स्कूल पास करने के बाद ही इनकी 'प्राण-भंग' नामक पुस्तक प्रकाशित हो गयी थी।

'दिनकर' हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक से लेकर, विहार सरकार के अधीन 'सव रजिस्ट्रार', प्रचार-विभाग के उपनिदेशक, मुजफ्फरपुर कालेज में हिन्दी के विभागाध्यक्ष, राज्य सभा के सदस्य तथा भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तक रहे थे। भारत-सरकार द्वारा ये पद्मभूषण से भी अलंकृत हुए थे। १६७४ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया।

इनकी रचनाओं में रेणुका, द्वन्द्वगीत, हुंकार, रसवन्ती, चक्रवाल, धूप-छाँह, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, सामधेनी, नीलकुसुम, सीपी और शंख, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा और हारे को हरिनाम—कविता पुस्तकें तथा संस्कृति के चार अध्याय, अर्धनारीश्वर, रेती के फूल तथा उजली आग आदि गद्य पुस्तकें प्रमुख हैं। इनका गद्य भी उच्चकोटि का तथा प्रांजल है। राष्ट्रकवि के रूप में प्रसिद्धि इन्हें रेणुका से ही प्राप्त हो गयी थी। उर्वशी (महाकाव्य) पर इन्हें एक लाख रुपये का ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्रदान किया गया था।

'दिनकर की कविताओं में अतीत के प्रति प्रेम तथा वर्तमान युग की दयनीय दशा के प्रति असन्तोष है। इनका मुख्य विषय अतीत का गौरव गान है तथा प्रगति और निर्माण के पथ पर अग्रसर होने का सन्देश देना है। इनकी कविता में गरीबों

के प्रति सहानुभूति और पूंजीवाद के प्रति विरोध की भावना भी है। 'दिनकर' की अधिकांश कविताओं में राष्ट्रीयता की भावना है तथा कुछ कविताओं में विश्व-प्रेम की झलक है।

इनके काव्य में सभी रसों का समावेश है पर वीररस की प्रधानता है। चित्रण भावपूर्ण तथा कविता का एक-एक शब्द आकर्षक होता है। रचनाएँ खड़ी बोली में हैं। भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। इन्होंने अधिकतर आधुनिक छन्दों का प्रयोग किया है।

नवीन चेतना और जन-मानस में देश भक्ति की लहरें उठाने वाले 'दिनकर' अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे।

———

मनुष्य और सर्प

चल रहा महाभारत का रण, जल रहा धरित्री का सुहाग,
फट कुरुक्षेत्र में खेल रही, नर के भीतर की कुटिल आग।
वाजियों-गज़ों की लोथों में, गिर रहे मनुज के छिन्न अंग।
वह रहा चतुष्पद और द्विपद का रुधिर मिश्र हो एक संग।

गत्वर, गैरेय, सुघर भूधर से, लिये रक्त रंजित शरीर,
थे जूझ रहे कौन्तेय-कर्ण, क्षण-क्षण करते गर्जन गभीर।
दोनों रण कुशल धनुर्धर नर, दोनों समबल, दोनों समर्थ,
दोनों पर दोनों की अमोघ, थी विशिख-वृष्टि हो रही व्यर्थ।

इतने में शर के लिए कर्ण ने, देखा ज्यों अपना निषंग,
तरकस में से फुंकार उठा, कोई प्रचंड विषधर भुजंग।
कहता कि "कर्ण! मैं अश्वसेन, विश्रुत भुजगों का स्वामी हूँ,
जन्म से पार्थ का शत्रु परम, तेरा बहुविधि हितकामी हूँ।"

"वस, एक बार कर कृपा धनुष पर, चढ़ शरव्य तक जाने दे,
इ महाशत्रु को अभी तुरत, स्यन्दन में मुझे सुलाने दे।
कर वमन गरल जीवन भर का, संचित प्रतिशोध उतारूँगा,
तू मुझे सहारा दे, बढ़कर, मैं अभी पार्थ को मारूँगा।"

राधेय जरा हँसकर वोला, "रे कुटिल ! वात क्या कहता है ?
जय का समस्त साधन नर का, अपनी वाँहों में रहता है।
उस पर भी साँपों से मिलकर मैं, मनुज, मनुज से युद्ध करूँ ?
जीवन भर जो निष्ठा पाली, उससे आचरण विरुद्ध करूँ ?"

"तेरी सहायता से जय तो, मैं अनायास पा जाऊँगा,
आनेवाली मानवता को, लेकिन, क्या मुख दिखलाऊँगा ?
संसार कहेगा, जीवन का, सव सुकृत कर्ण ने क्षार किया;
प्रतिभट के वध के लिए, सर्प का पापी ने साहाय्य लिया।"

"रे अश्वसेन ! तेरे अनेक, वंशज हैं छिपे नरों में भी,
सीमित वन में हो नहीं, वहुत, वसते पुर-ग्राम-घरों में भी।
ये नर-भुजंग मानवता का, पथ कठिन वहुत कर देते हैं।
प्रतिबल के वध के लिए नीच, सहाय्य सर्प का लेते हैं।"

"ऐसा न हो कि इन साँपों में, मेरा भी उज्जवल नाम चढ़े।
पाकर मेरा आदर्श और कुछ, नरता का यह पाप बढ़े।
अर्जुन है मेरा शत्रु, किन्तु, वह सर्प नहीं, नर ही तो है,
संघर्ष सनातन नहीं, शत्रुता, इस जीवन भर ही तो है।"

"अगला जीवन किसलिए भला, तव हो द्वेषान्ध बिगाड़ूँ मैं ?
साँपों की जाकर शरण, सर्प वन, क्यों मनुष्य को मारूँ मैं ?
जा भाग, मनुज का सहज शत्रु, मित्रता न मेरी पा सकता,
मैं किसी हेतु भी यह कलंक, अपने पर नहीं लगा सकता।"

['रश्मिरथी' से]

आग की भीख

धुँधली हुईं दिशाएँ, छाने लगा कुहासा,
कुचली हुई शिखा से आने लगा धुआँ-सा।
कोई मुझे वता दे, क्या आज हो रहा है;
मुँह को छिपा तिमिर में क्यों तेज रो रहा है?

दाता, पुकार मेरी, संदीप्ति को जिला दे;
बुझती हुई शिखा को संजोविनी पिला दे।
प्यारे स्वदेश के हित अंगार माँगता हूँ।
चढ़ती जवानियों का शृंगार माँगता हूँ।

बेचैन हैं हवाएँ, सव ओर बेकली है,
कोई नहीं वताता, किश्ती किधर चली है?
मँझधार है, भँवर है या पास है किनारा?
यह नाश आ रहा या सौभाग्य का सितारा?

आकाश पर अनल से लिख दे अदृष्ट मेरा,
भगवान, इस तरी को भरमा न दे अँधेरा।
तम-वेधिनी किरण का संधान माँगता हूँ।
ध्रुव की कठिन घड़ी में पहचान माँगता हूँ।

आगे पहाड़ को पा धारा रुकी हुई है,
वल-पुंज केसरी की ग्रीवा झुकी हुई है;
अग्निस्फुलिंग रज का, बुझ, ढेर हो रहा है,
है रो रही जवानी, अन्धेरा हो रहा है।

निर्वाक् है हिमालय, गंगा डरी हुई है।
निस्तब्धता निशा की दिन में भरी हुई है।
पंचास्य-नाद भीषण, विकराल माँगता हूँ।
जड़ता-विनाश को फिर भूचाल माँगता हूँ।

मन की बँधी उमंगें असहाय जल रहीं हैं,
अरमान-आरजू की लाशें निकल रही हैं।
भींगी-खुली पलों में रातें गुजारते हैं,
सोती वसुन्धरा जब तुमको पुकारते हैं।

इनके लिए कहीं से निर्भीक तेज ला दे,
पिघले हुए अनल का इनको अमृत पिला दे,
उन्माद, बेकली का उत्थान माँगता हूँ,
विस्फोट माँगता हूँ, तूफान माँगता हूँ।

आँसू-भरे दृगों में चिनगारियाँ जला दे,
मेरे श्मशान में आ शृंगी जरा बजा दे;
फिर एक तीर सीनों के आर-पार कर दे,
हिमशीत प्राण में फिर अंगार स्वच्छ भर दे।

आमर्ष को जगाने वाली शिखा नयी दे,
अनुभूतियाँ हृदय में दाता, अनलमयी दे।
विष का सदा लहू में संचार माँगता हूँ,
बेचैन जिन्दगी का मैं प्यार माँगता हूँ।

ठहरी हुई तरी को ठोकर लगा चला दे,
जो राह हो हमारी उस पर दिया जला दे।
गति में प्रभंजनों का आवेग फिर सबल दे।
इस जाँच की घड़ी में निष्ठा कड़ी, अचल दे।

हम दे चुके लहू हैं, तू देवता, विभा दे,
अपने अनल-विशिख से आकाश जगमगा दे।
प्यारे स्वदेश के हित वरदान माँगता हूँ,
तेरी दया विपद में भगवान, माँगता हूँ।

['सामधेनी' से]

भगवान के डाकिये

पक्षी और बादल,
ये भगवान के डाकिये हैं,
जो एक महादेश से
दूसरे महादेश को जाते हैं।
हम तो समझ नहीं पाते हैं,
मगर उनकी लायी चिट्ठियाँ
पेड़, पौधे, पानी और पहाड़
वाँचते हैं।
हम तो केवल यह आँकते हैं,
कि एक देश की धरती
दूसरे देश को सुगन्ध भेजती है।
और वह सौरभ हवा में तैरते हुए
पक्षियों की पाँखों पर तिरता है।
और एक देश का भाप
दूसरे देश में पानी
बन कर गिरता है।

['हारे को हरि नाम से' से]

प्रश्न

१—मनुष्य और सर्प रचना के पहले छन्द से युद्ध के प्रति कवि का क्या दृष्टिकोण लक्षित होता है ?

२—'जल रहा धरित्री का सुहाग' तथा 'नर के भीतर की कुटिल आग' से कवि का क्या तात्पर्य है ?

३—अश्वसेन अर्जुन से क्यों शत्रुता मानता था ?

४—कर्ण ने अश्वसेन की सहायता क्यों नहीं स्वीकार की ? इससे कर्ण के चरित्र की कौन-सी विशेषता प्रकट होती है ?

५—शत्रु तथा शत्रु के सम्बन्ध में कर्ण का क्या दृष्टिकोण था ?

६—आग की भीख कविता में कवि ने आग को किसका प्रतीक माना है ?

७—देश के हितार्थ भगवान से कवि किस वरदान की याचना करता है ?

८—पक्षी और बादल को भगवान के डाकिए क्यों कहा गया है ?

९—मगर उनकी लाई चिट्ठियाँ…………………………………बाँचते हैं को स्पष्ट कीजिए।

अभ्यास

१—भाव स्पष्ट कीजिए—

(अ) ये नर भुजंग…………बहुत कर देते हैं।

(ब) अर्जुन मेरा शत्रु…………नर ही तो है।

(स) बलपुंज केसरी…………हुई हैं।

(द) भीगी खुली पलों में…………तुमको पुकारते हैं।

२—'गत्वर-गैरेय' में 'ग' अक्षर की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर आये अनुप्रास अलंकार छाँट कर लिखिए।

३—'प्यार', 'शृंगार', 'पहिचान', भूचाल', 'भगवान की दया' शब्दों में से छाँटकर नीचे लिखे वाक्य पूरे कीजिए।

(अ) ध्रुव की कठिन घड़ी में…………चाहिए।

(ब) चढ़ती जवानियों के लिए…………चाहिए।

(स) जड़ता के विनाश के लिए…………चाहिए।

(द) बेचैन जिन्दगी का…………चाहिए।

(य) विपद में…………………चाहिए।

सुभद्राकुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म सन् १९०४ ई० में इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। बहुत छोटी अवस्था से ही इन्हें हिन्दी काव्य से विशेष प्रेम था, जो बाद में जाकर पल्लवित हुआ। इनका विवाह खंडवा (मध्य प्रदेश) निवासी ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान के साथ हुआ। विवाह के साथ ही सुभद्राजी के जीवन में एक नवीन मोड़ आया। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के आन्दोलन का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा और उससे प्रेरित होकर ये राष्ट्र-प्रेम पर कविताएँ लिखने लगीं। सन् १९४८ ई० में एक मोटर-दुर्घटना में इनकी असामयिक मृत्यु हो गयी।

सुभद्राजी की काव्य-साधना के पीछे उत्कट देश-प्रेम, अपूर्व साहस तथा आत्मोत्सर्ग की प्रबल कामना है। आजादी के लिए जेल-जीवन की सम्पूर्ण यातनाओं को हँसते-खेलते, सुखपूर्वक सहने में इन्हें आनन्द आता था। इनकी कविता में सच्ची वीरांगना का ओज और शौर्य प्रकट हुआ है। हिन्दी-काव्य जगत में ये अकेली ऐसी कवयित्री हैं जिन्होंने अपने कण्ठ की पुकार से लाखों भारतीय युवक-युवतियों को युग-युग की अकर्मण्य उदासी को त्याग, स्वतंत्रता-संग्राम में अपने को झोंक देने के लिए प्रेरित किया। वर्षों तक सुभद्राजी की 'झाँसी वाली रानी थी' और 'वीरों का कैसा हो वसंत' शीर्षक कविताएँ लाखों तरुण-तरुणियों के हृदय में आग फूंकती रहीं।

सुभद्राजी की भाषा सीधी, सरल तथा स्पष्ट एवं आडम्बरहीन खड़ी बोली है। मुख्यतः दो रस इन्होंने चित्रित किये हैं—वीर तथा वात्सल्य। अपने काव्य में पारिवारिक जीवन के मोहक चित्र भी इन्होंने अंकित किये हैं जिनमें वात्सल्य की मधुर व्यंजना हुई है। इनके काव्य में एक ओर नारी-सुलभ ममता सुकुमारता है और दूसरी ओर पद्मिनी के जौहर की भीषण ज्वाला। अलंकारों अथवा कल्पित प्रतीकों के मोह में न पड़ कर सीधी सादी स्पष्ट अनुभूति को इन्होंने प्रधानता दी है।

'मुकुल' और 'त्रिधारा' इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं, 'सीधे सादे चित्र', 'बिखरे मोती', और 'उन्मादिनी' इनकी कहानियों के संकलन हैं।

वीरों का कैसा हो वसंत ?

वीरों का कैसा हो वसंत ?
आ रही हिमाचल से पुकार,
हैं उदधि गरजता वार-वार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग,
हैं वीर-वेश में किन्तु कंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
हैं रंग और रण का विधान,
मिलने आये हैं आदि-अंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

गलबाँहें हों, या हो कृपाण,
चल-चितवन हो, या धनुष-बाण,
हो रस-विलास, या दलित-त्राण,
अब यही समस्या है दुरन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

कह दे अतीत ! अब मौन त्याग,
लंके ! तुझमें क्यों लगी आग ?
ऐ कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

हल्दी-घाटी के शिला-खंड,
ऐ दुर्ग ! सिंह-गढ़ के प्रचंड,
राणा-ताना का कर घमंड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कमल बँधी, स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन ? हंत !
वीरों का कैसा हो वसंत ?

['मुकुल' से]

झाँसी की रानी की समाधि पर

इस समाधि में छिपी हुई है,
एक राख की ढेरी।
जल कर जिसने स्वतन्त्रता की,
दिव्य आरती फेरी ॥

यह समाधि, यह लघु समाधि है,
झाँसी की रानी की।
अंतिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की॥

यहो कहीं पर विखर गयी वह,
भग्न विजय-माला-सी।
उसके फूल यहाँ संचित हैं,
है यह स्मृति-शाला-सी॥

सहे वार पर वार अंत तक,
लड़ी वीर वाला-सी।
आहुति-सी गिर चढ़ी चिता पर,
चमक उठी ज्वाला-सी॥

बढ़ जाता है मान वीर का,
रण में वलि होने से।
मूल्यवती होती सोने की,
भस्म यथा सोने से॥

रानो से भी अधिक हमें अव,
यह समाधि है प्यारी।
यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की,
आशा की चिनगारी॥

इससे भी सुंदर समाधियाँ,
हम जग में हैं पाते।
उनकी गाथा पर निशीथ में,
क्षुद्र जंतु ही गाते॥

पर कवियों की अमर गिरा में,
इसकी अमिट कहानी।
स्नेह और श्रद्धा से गाती
है, वीरों की बानी॥
बुंदेले हरबोलों के मुख,
हमने सुनी कहानी।
खूब लड़ी मरदानी वह थीं,
झाँसी वाली रानी॥
यह समाधि, यह चिर समाधि
है, झाँसी की रानी की।
अंतिम लीलास्थली यही है,
लक्ष्मी मरदानी की॥

['त्रिधारा' से]

प्रश्न

१–'वीरों का कैसा हो वसन्त' कविता में क्या प्रश्न उठाया गया है ?
२–उपर्युक्त कविता में प्रकृति किस रूप में प्रकट हुई है ?
३–'भूषण' और 'चन्द' कवि की याद दिला कर कवयित्री पाठक के मन में किस भाव को जागरित करना चाहती है ?
४–इस कविता में कौन-से दो रसों का वर्णन है ?
५–झाँसी की रानी के लिए कवयित्री ने किन विशेषणों का प्रयोग किया है और वे कहाँ तक सार्थक हैं ?
६–झाँसी की रानी की समाधि को कवयित्री ने 'रानी से भी अधिक प्यारी' बतलाया है। क्यों ?
७–'पर कवियों की अमर गिरा में इसकी अमिट कहानी' से आप क्या समझते हैं ? अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।

अभ्यास

१—निम्नलिखित का आशय स्पष्ट कीजिए—

(क) वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग

(ख) है रंग और रण का विधान

(ग) भग्न विजय-माला-सी

(घ) मूल्यवती होती सोने की भस्म यथा सोने से।

(ङ) उनकी गाथा पर निशीथ में क्षुद्र जंतु ही गाते।

२—कोष्ठक में से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

(क) झाँसी की रानी शत्रु से..................के लिए लड़ी।
(परतंत्रता, द्वेष, आजादी)

(ख) पृथ्वी का अंग-अंग..............ऋतु आने से पुलकित है।
(पतझर, शीत, वसंत,)

(ग) वीर का मन रण में....................बढ़ जाता है।
(पीठ दिखाने से, बलि होने से, लड़ने से)

३—'आहुति सी गिर पड़ी चिता पर' में उपमा अलंकार है। इस कविता में इसी प्रकार उपमा अलंकार के तीन अन्य उदाहरण छाँटिए।

सोहनलाल द्विवेदी

सोहनलाल द्विवेदी का जन्म सन् १६०६ ई० में फतेहपुर जिले के बिन्दकी नामक कस्बे में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनकी हाई स्कूल तक की शिक्षा फतेहपुर में तथा उच्च शिक्षा हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में हुई। वहाँ के पवित्र राष्ट्रीय वातावरण में महामना मालवीयजी के सम्पर्क से इनके हृदय में राष्ट्रीयता की भावना जगी और इन्होंने राष्ट्रीय भावना प्रधान कविताएँ लिखना आरम्भ किया।

काव्य-रचना के साथ स्वाधीनता आन्दोलन में भी इन्होंने सक्रिय भाग लिया। द्विवेदीजी गाँधीवादी कवि हैं। इन्होंने राष्ट्रीय कविताओं के अतिरिक्त लोकप्रिय बाल-कविताएँ भी लिखी हैं।

इनकी राष्ट्रीय कविताओं के प्रमुख संग्रह हैं—भैरवी, पूजागीत, प्रभाती और चेतना। वासन्ती उनके प्रेम गीतों का संग्रह है। दूध बताशा, शिशु भारती तथा बालभारती आदि बाल-कविता संग्रह हैं। कुणाल, वासवदत्ता और विषपान आख्यान-काव्य हैं।

द्विवेदीजी की कविताओं का मुख्य विषय राष्ट्रीय उद्बोधन है। इनमें जागरण का सन्देश है। खादी-प्रचार, ग्राम-सुधार, देश-भक्ति, सत्य, अहिंसा और प्रेम इनकी कविता के मुख्य विषय हैं। बालोपयोगी रचनाएँ सरस और मधुर हैं।

द्विवेदीजी की भाषा सरस, बोधगम्य, सीधी-सादी और स्वाभाविक है। कविता में व्यर्थ का अलंकार-प्रदर्शन नहीं है। शैली में प्रवाह और रोचकता है। राष्ट्रीय कविताएँ ओजपूर्ण हैं।

राष्ट्रीय जागरण और समाज-सुधार के कार्यों में संलग्न द्विवेदीजी की साहित्य-साधना ही इनके जीवन का पथ बन गयी है।

जय जय निर्भय हे !

जय जय निर्भय हे !
जय जय जय जय हे !

आत्म नियंता, आत्म तपस्वी,
सत्य, सबल दुर्भेद्य मनस्वी,

रण-प्रण-व्रण-मय, अमर यशस्वी,

बलमय, बलिमय हे !
जय जय जय जय हे !

दीन दलित जनगण के त्राता।
मृत हत जीवन जन्म विधाता।

युग युग अक्षय हे !
जय जय निर्भय हे !

शोषित पीड़ित जन के नायक,
नवयुग, नवजग, राष्ट्र विधायक,

महामुक्ति के कर्मठ गायक !

भव अरुणोदय हे !
जय जय निर्भय हे !

['जय भारत जय' से]

उन्हें प्रणाम

भेद गया है दीन-अश्रु से जिनका मर्म,
मुहताजों के साथ न जिनको आती शर्म,
किसी देश में किसी वेश में करते कर्म,
मानवता का संस्थापना ही है जिनका धर्म !

ज्ञात नहीं हैं जिनके नाम !
उन्हें प्रणाम ! सतत प्रणाम !

कोटि कोटि नंगों, भिखमंगों के जो साथ,
खड़े हुए हैं कंधा जोड़े, उन्नत माथ,
शोषित जन के, पीड़ित जन के, कर को थाम,
वढ़े जा रहे उधर जिधर है मुक्ति प्रकाम !

ज्ञात और अज्ञात मात्र ही जिनके नाम !
वन्दनीय उन सत्पुरुषों को सतत प्रणाम !

जिनके गीतों के पढ़ने से मिलती शान्ति,
जिनकी तानों के सुनने से झिलती भ्रान्ति,
छा जाती मुखमण्डल पर यौवन की कान्ति,
जिनकी टेकों पर टिकने से टिकती क्रान्ति ।

मरण मधुर वन जाता है जैसे वरदान,
अधरों पर खिल जाती है मादक मुस्कान,
नहीं देख सकते जग में अन्याय वितान,
प्राण उच्छ्वसित होते, होने को वलिदान !

जो घावों पर मरहम का कर देते काम !
उन सहृदय हृदयों को मेरे कोटि प्रणाम !
उन्हें जिन्हें है नहीं जगत में अपना काम,
राजा से वन गये भिखारी तज आराम,

दर-दर भीख माँगते सहते वर्षा घाम,
दो सूखी मधुकरियाँ दे देती विश्राम !

जिनकी आत्मा सदा सत्य का करती शोध,
जिनको है अपनी गौरव गरिमा का बोध,
जिन्हें दुखी पर दया, क्रूर पर आता क्रोध,
अत्याचारों का अभीष्ट जिनको प्रतिशोध !
उन्हें प्रणाम ! सतत प्रणाम !

जो निर्धन के धन निर्बल के बल अविराम !
उन नेताओं के चरणों में कोटि प्रणाम !

मातृभूमि का जगा जिन्हें ऐसा अनुराग !
यौवन में ही लिया जिन्होंने है वैराग,
नगर-नगर की ग्राम-ग्राम की छानी धूल
समझे जिससे सोई जनता अपनी भूल !

जिनको रोटी नमक न होता कभी नसीब,
जिनको युग ने बना रखा है सदा गरीब,
उन मूर्खों को विद्वानों को जो दिन रात,
इन्हें जगाने को फेरी देते हैं प्रात ;
जगा रहे जो सोए गौरव को अभिराम !
उस स्वदेश के स्वाभिमान को कोटि प्रणाम !

जंजीरों में कसे हुए सिकचों के पार
जन्मभूमि जननी की करते जयजयकार
सही कठिन, हथकड़ियों की, बेतों की मार
आजादी की कभी न छोड़ी टेक पुकार !
स्वार्थ, लोभ, यश कभी सका है जिन्हें न जीत
जो अपनी धुन के मतवाले मन के मीत

ढाने को साम्राज्यवाद की दृढ़ दीवार
वार-वार बलिदान चढ़े प्राणों को वार !

बंद सीकचों में जो हैं अपने सरनाम
धीर, वीर उन सत्पुरुषों को कोटि प्रणाम !
उन्हीं कर्मठों, ध्रुव धीरों को है प्रतियाम !
कोटि प्रणाम !

जो फाँसी के तख्तों पर जाते हैं झूल,
जो हँसते-हँसते शूली को लेते चूम,
दीवारों में चुन जाते हैं जो मासूम,
टेक न तजते, पी जाते हैं विष का धूम !

उस आगत को जो कि अनागत दिव्य भविष्य
जिनकी पावन ज्वाला में सब पाप हविष्य !
सब स्वतन्त्र, सब सुखी जहाँ पर सुख विश्राम
नवयुग के उस नव प्रभात की किरण ललाम !

उस मंगलमय दिन को मेरे कोटि प्रणाम !
सर्वोदय हँस रहा जहाँ, सुख शान्ति प्रकाम !

['जय भारत जय' से]

प्रश्न

१—इस जयगान में 'जय जय निर्भय हे' का संबोधन किसके लिए है ?
२—'रण-प्रण-व्रण-मय' कहकर किन गुणों पर प्रकाश डाला गया है ?
३—'बलमय, बलिमय हे' का भाव स्पष्ट कीजिए।
४—राष्ट्र-निर्माता को कवि ने 'मृत हत जीवन जन्म विधाता' कहा है, क्यों ?
५—उसे 'भव अरुणोदय' कहकर पुकारने का क्या भाव है ?
६—कवि की दृष्टि में वन्दनीय पुरुष कौन से हैं ?
७—क्रान्ति के आश्रय दाताओं के कौन-कौन से लक्षण बताये गये हैं ?

८—देश-भक्तों द्वारा नगर-नगर और ग्राम-ग्राम की धूल छानने के पीछे उनका क्या उद्देश्य रहता है ?

९—'उन्हें प्रणाम' कविता में कवि की आशा का क्या स्वरूप है ?

१०—कवि किस मंगलमय दिन को अपना प्रणाम अर्पित करता है ?

अभ्यास

१—अर्थ स्पष्ट कीजिए :

(अ) आत्म नियंता ;

(ब) आत्म तपस्वी ;

(स) दुर्भेद्य मनस्वी ;

(द) महा मुक्ति के कर्मठ गायक ;

२—निम्न पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए :

(अ) भेद गया है दीन अश्रु से.........उन्हें प्रणाम, सतत प्रणाम .

(ब) शोषित जन के.........मुक्ति प्रकाम ।

(भ) मातृभूमि का जग.........अपनी भूल ।

(द) उस आगत को.........हविष्य ।

३—वाक्य पूरे कीजिए—

(अ) देशभक्तों का मरण ऐसे मधुर बन जाता है जैसे.........

(ब) उस मंगलमय दिन को कवि का कोटि प्रणाम है जहाँ.........

४—रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए —

उनको हमारा कोटिशः प्रणाम है

(अ) जिनका धर्म............संस्थापन है ।

(ब) जो कोटि कोटि......साथ हैं ।

(स) जो आराम छोड़कर............वन गये हैं ।

(द) जो कठिन हथकड़ियों की मार सहते हैं, परन्तु.........नहीं छोड़ते ।

विविधा :

'बच्चन', 'नागार्जुन' तथा 'सुमन'

हरिवंशराय 'बच्चन'

हरिवंशराय 'वच्चन' का जन्म प्रयाग में सन् १९०७ ई० में हुआ । इन्होंने काशी और प्रयाग में शिक्षा प्राप्त की। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से इन्होंने डाक्टरेट प्राप्त की। कुछ समय ये प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापक रहे और फिर दिल्ली में विदेश मंत्रालय में। वहीं से इन्होंने अवकाश ग्रहण किया है।

'वच्चन' उत्तर छायावादी काल के आस्थावादी कवि हैं। इनकी कविताओं में मानवीय भावनाओं की सामान्य एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। सरलता, संगीतात्माकता प्रवाह और मार्मिकता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं और इन्हीं से इनको इतनी अधिक लोक-प्रियता प्राप्त हुई।

आरम्भ में 'वच्चन' **उमर खैयाम** के जीवन-दर्शन से बहुत प्रभावित रहे। इसी ने इसके जीवन को मस्ती से भर दिया। **मधुशाला, मधुबाला, हाला** और **प्याला** को इन्होंने प्रतीकों के रूप में स्वीकार किया।

पहली पत्नी की मृत्यु के वाद घोर विषाद और निराशा ने इनके जीवन को घेर लिया। इसके स्वर हमको **निशा-निमंत्रण** और **एकान्त संगीत** में सुनने को मिले। इसी समय से हृदय की गम्भीर वृत्तियों का विश्लेषण आरम्भ हुआ। किन्तु **सतरंगिणी** में फिर नीड़ का निर्माण किया गया और जीवन का प्याला एक बार फिर उल्लास और आनन्द के आसव से छलकने लगा। 'बच्चन' वास्तव में व्यक्तिवादी कवि रहे पर 'बंगाल का काल, तथा इसी प्रकार की अन्य रचनाओं में इन्होंने अपने जीवन के बाहर विस्तृत जनजीवन पर भी दृष्टि डालने का प्रयत्न किया। इन परवर्ती रचनाओं में कुछ नवीन विषय भी उठाये गये और कुछ अनुवाद भी प्रस्तुत किये गये। इनमें कवि की विचारशीलता तथा चिंतन की प्रधानता रही।

इन परवर्ती रचनाओं में कवि की वह भावावेश पूर्ण तन्मयता नहीं है, जो उसकी आरम्भिक रचनाओं में पाठकों और श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करती रही।

नागार्जुन

श्री वैद्यनाथ मिश्र (यात्री : नागार्जुन) का जन्म दरभंगा जिले के सतलखा ग्राम में सन् १९११ ई० में हुआ था। इनका आरम्भिक जीवन अभावों का जीवन था। जीवन के अभावों ने ही आगे चलकर इनके संघर्षशील व्यक्तित्व का निर्माण किया। व्यक्तिगत दुख ने इन्हें मानवता के दुख को समझने की क्षमता प्रदान की। इनके जीवन की यही रागिनी इनकी रचनाओं में मुखर हुई है।

इनके हृदय में सदैव दलित-वर्ग के प्रति संवेदना रही है। अपनी कविताओं में ये अत्याचार-पीड़ित, त्रस्त व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करके ही संतुष्ट नहीं हो गये बल्कि उनको अनीति और अन्याय का विरोध करने की प्रेरणा भी देते हैं। सम-सामयिक, राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं पर इन्होंने काफी लिखा है और अब भी लिख रहे हैं। व्यंग्य करने में इन्हें संकोच नहीं। तीखी और सीधी चोट करने वाले ये वर्तमान युग के प्रमुख व्यंग्यकार हैं।

नागार्जुन जीवन के, धरती के, जनता के तथा श्रम के गीत गाने वाले ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं को किसी वाद की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की भाँति इन्होंने अपनी कविता को भी स्वतंत्र रखा है।

नागार्जुन की भाषा-शैली सरल, स्पष्ट तथा मार्मिक प्रभाव डालने वाली है। काव्य-विषय इनके प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट उभर कर आते हैं। इनके गीतों में जन-जीवन का संगीत है।

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म सन् १९१६ ई० में वसंत पंचमी को झगरपुर जिला उन्नाव (उत्तर प्रदेश) में हुआ था।

छायावाद के अंतिम चरण में ये काव्य के क्षेत्र में आये और आरम्भ में प्रेम-गीत लिखते रहे। धीरे-धीरे इन्होंने प्रेम से अधिक कर्त्तव्य के महत्त्व को स्वीकार किया।

प्रकृति के विशाल क्षेत्र से उठती हुई त्रस्त मानवता की कराह ने इनके ध्यान को आकर्षित किया और ये देश के राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित हुए। मन में क्रान्ति की आग धधक उठी। हृदय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के प्रति विरक्ति से भर गया। रचनाओं में साम्राज्यवाद विरोधी स्वर मुखर हुए। यद्यपि इनका झुकाव साम्यवाद की ओर रहा और रूस की नवीन अर्थव्यवस्था ने इनको आकर्षित किया, पर गाँधीजी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों पर भी इनकी आस्था दृढ़ बनी रही। इसी कारण इनकी कविताओं के क्रान्तिकारी स्वर इतने लोक-प्रिय बन सके। इनकी रचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये भारतीय समाज के नव-निर्माण के लिए व्याकुल हैं।

सुमनजी की भाषा स्वच्छ, प्रांजल, ललित, कोमल और स्पष्ट है। इनकी शैली प्रसाद तथा ओज गुण से पूर्ण है। मुक्त छंद लिखते हुए भी ये परम्परागत छंदों की समृद्धि में सहयोग देते रहे हैं। गीतों में संगीतात्मकता, मस्ती और लय है।

सुमनजी के काव्य में इनका अपना जीवन दर्शन है, जिसमें वर्तमान के हर्ष-पुलक, राग-विराग और आशा-उत्साह के स्वर भी मुखरित हुए हैं।

पथ की पहचान

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

(१)

पुस्तकों में है नहीं
छापी गयी इसकी कहानी,
हाल इसका ज्ञात होता
है न औरों को जवानी,
अनगिनत राही गये इस
राह से, उनका पता क्या,
पर गये कुछ लोग इस पर
छोड़ पैरों की निशानी,
यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ, पंथी,
पंथ का अनुमान कर ले।

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

(२)

यह बुरा है या कि अच्छा,
व्यर्थ दिन इस पर बिताना,
अब असंभव, छोड़ यह पथ
दूसरे पर पग बढ़ाना,

तू इसे अच्छा समझ,
यात्रा सरल इससे बनेगी,
सोच मत केवल तुझे ही
यह पड़ा मन में बिठाना,
हर सफल पंथी, यही
विश्वास ले इस पर बढ़ा है,
तू इसी पर आज अपने
चित्त का अवधान कर ले।
पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

(३)

है अनिश्चित किस जगह पर
सरित, गिरि, गह्वर मिलेंगे,
है अनिश्चित, किस जगह पर
बाग, वन सुन्दर मिलेंगे।
किस जगह यात्रा खतम हो
जायगी, यह भी अनिश्चित,
है अनिश्चित, कब सुमन, कब
कंटकों के शर मिलेंगे,
कौन सहसा छूट जायेंगे,
मिलेंगे कौन सहसा
आ पड़े कुछ भी, रुकेगा
तू न, ऐसी आन कर ले।
पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

(४)

कौन कहता है कि स्वप्नों
को न आने दे हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें
अपनी उमर, अपने समय में,

और तू कर यत्न भी तो
मिल नहीं सकती सफलता,

ये उदय होते, लिये कुछ
ध्येय नयनों के निलय में,

किंतु जग के पंथ पर यदि
स्वप्न दो तो सत्य दो सौ,
स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो,
सत्य का भी ज्ञान कर ले।

पूर्व चलने के, बटोही,
बाट की पहचान कर ले।

(५)

स्वप्न आता स्वर्ग का, दृग-
कोरकों में दीप्ति आती,
पंख लग जाते पगों को,
ललकती उन्मुक्त छाती,

रास्ते का एक काँटा
पाँव का दिल चीर देता,

रक्त की दो बूंद गिरतीं,
एक दुनिया डूब जाती,

आँख में हो स्वर्ग लेकिन
पाँव पृथ्वी पर टिके हों,
कंटकों की इस अनोखी
सीख का सम्मान कर ले।
पूर्व चलने के, वटोही,
बाट की पहचान कर ले।

[बच्चन : सतरँगिणी से]

बादल को घिरते देखा है।

अमल धवल गिरि के शिखरों पर, बादल को घिरते देखा है।
छोटे छोटे मोती जैसे, अतिशय शीतल वारि कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम-कमलों पर गिरते देखा है।
तुंग हिमाचल के कंधों पर छोटी बड़ी कई झीलों के
श्यामल शीतल अमल सलिल में
समतल देशों से आ-आकर
पावस की ऊमस से आकुल
तिक्त मधुर विसतंतु खोजते, हंसों को तिरते देखा है।
एक दूसरे से वियुक्त हो
अलग अलग रहकर ही जिनको
सारी रात बितानी होती—
निशा काल के चिर अभिशापित
बेबस उन चकवा-चकई का,
बन्द हुआ क्रन्दन फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर, प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।

कहाँ गया धनपति कुबेर वह,
कहाँ गयी उसकी वह अलका ?
नहीं ठिकाना कालिदास के,
व्योम-वाहिनी गंगाजल का !

ढूँढा बहुत परन्तु लगा क्या, मेघदूत का पता कहीं पर !
कौन बताये यह यायावर, बरस पड़ा होगा न यहीं पर !

जाने दो, वह कवि-कल्पित था,

मैंने तो भीषण जाड़ों में, नभचुम्वी कैलाश शीर्ष पर
महामेघ को झंझानिल से, गरज-गरज भिड़ते देखा है।

दुर्गम बर्फानी घाटी में,
शत सहस्र फुट उच्च शिखर पर
अलख नाभि से उठने वाले
अपने ही उन्मादक परिमल
के ऊपर धावित हो-होकर

तरल तरुण कस्तूरी मृग को अपने पर चिढ़ते देखा है।

शत-शत निर्झर निर्झरिणी-कल
मुखरित देवदारु कानन में

शोणित धवल भोज पत्रों से छाई हुई कुटी के भीतर
रंग बिरंगे और सुगन्धित फूलों से कुन्तल को साजे
इन्द्रनील की माला डाले शंख सरीखे सुघर गले में,
कानों में कुवलय लटकाये, शतदल रक्त कमल वेणी में;

रजत-रचित मणि खचित कलामय
पान-पात्र द्राक्षासव पूरित
रखे सामने अपने-अपने
लोहित चन्दन की त्रिपदी पर

नरम निदाग-बाल कस्तूरी-
मृग छालों पर पल्थी मारे
मदिरारुण आँखों वाले उन
उन्मद किन्नर किन्नरियों की
मृदुल मनोरम अंगुलियों को वंशी पर फिरते देखा हैं।

[नागार्जुन : प्यासी पथराई आँखों से]

युगवाणी

हर क्यारी में पद चिह्न तुम्हारे देखे हैं
हर डाली में मुस्कान तुम्हारी पायी है,
हर काँटे में दुख-दर्द किसी का कसका है
हर शबनम ने जीवन की प्यास जगायी है।

हर सरिता की लचकीली लहरें डसती हैं
हर अंकुर की आँखों में कोर समाती है,
हर किसलय में अधरों की आभा खिलती है
हर कली हवा में मचल-मचल इठलाती है।

अम्बर में उगतीं सोने-चाँदी की फसलें
ये ज्वार बाजरे की मस्ती लहराती है
अन्तर में इसका बिम्ब उभरता आता है,
चाँदनी सिन्धु में सौ-सौ ज्वार जगाती है।

मैं कैसे इनकी मोहकता से मुख मोड़ूँ,
मैं कैसे जीवन के सौ-सौ धंधे छोड़ूँ,
दोनो को साथ लिये चलना क्या संभव है ?
तन का मन का पावन नाता कैसे तोड़ूँ ?

क्या उम्र ढलेगी तो यह सब जायेगा
सूरज चन्दा का पानी गल जल जायेगा,
जिनके बल पर जीने-मरने का स्वर साधा
उनका आकर्षण साँसों को छल जायेगा।

जिस दिन सपनों के मोल-भाव पर उतरूँगा
जिस दिन संघर्षों पर जाली चढ़ जायेगी,
जिस दिन लाचारी मुझपर तरस दिखायेगी।
उस दिन जीवन से मौत कहीं बढ़ जायेगी।

इन सबसे बढ़कर भूख बिलखती मिट्टी की
पथ पर पथराई आँखें पास बुलाती हैं,
भगवान भूल में रचकर जिनको भूल गया
जिनकी हड्डी पर धर्म-ध्वजा फहराती है।

इनको भूलूं तो मेरी मिट्टी मिट्टी है
मेरी आँखों का पानी केवल पानी है,
इनको भूलूं तो मेरा जन्म अकारथ है
मेरा जीना मरने की मूक कहानी है।

मैं देख रहा हूँ तुम इनको फिर भूल चले
बातों-बातों में हमें बहुत बहलाते हो,
बेबसी चीखती जब बच्चों की लाशों पर
उसको आजादी की प्रतिध्वनि बतलाते हो।

यों खेल करोगे तुम कब तक असहायों से
कब तक अफीम आशा की हमें खिलाओगे,
बरबाद हो गयी फसल कहीं जोती बोयी
क्या बैठ अकेले ही मरघट पर गाओगे ?

विश्वास सर्वहारा का तुमने खोया तो
आसन्न मौत की गहन गोंस गड़ जायेगी,

यदि बाँध बाँधने के पहले जल सूख गया
धरती की छाती में दरार पड़ जायेगी।

सदियों की कुर्बानी यदि यों बेमोल बिकी
जमुहाई लेने में खो गया सबेरा यदि,
जनता पूर्णिमा मनाने की जब तक सोचे
घिर गया अमावस का अम्बर में घेरा यदि।

इतिहास न तुमको माफ करेगा याद रहे
पीढ़ियाँ तुम्हारी करनी पर पछतायेंगी,
पूरब की लाली में कालिख पुत जायेंगी
सदियों में फिर क्या ऐसी घड़ियाँ आयेंगी?

इसलिए समय के सैलावों को मत रोको
खुशहाल हवाओं में न खिड़कियाँ बन्द करो,
हर किरण जिन्दगी की आँगन तक आने दो
नव-निर्माणों की लपटों को मत मन्द करो।

इस नये सवेरे की लाली को देखो तो
इसकी अपनी कितनी पहचान पुरानी है,
भू, भुवः स्वर्ग को एक वनाने आयी जो
युग की गायत्री सब छन्दों की रानी है।

[सुमन : विन्ध्य हिमालय से

प्रश्न

१—बाधाओं और कठिनाइयों के लिए कवि ने 'पथ की पहचान' कविता में किन प्रतीकों का प्रयोग किया है?

२—'पथ की पहचान' कविता के द्वारा कवि क्या सन्देश देना चाहता है?

३—'बादल को घिरते देखा है' कविता में कवि ने किस पर्वत की चोटी पर घिरते बादलों के सौन्दर्य का वर्णन किया है?

४–'बादल को घिरते देखा है' कविता में किन्नर-किन्नरियों का जो चित्र खींचा गया है उसे अपने शब्दों में प्रस्तुत कीजिए ?

५–'युगवाणी' में 'इनको भूलूं तो मेरी मिट्टी मिट्टी है' इस पंक्ति से कवि ने किनके भूलने की बात कही है और अपने को क्यों धिक्कारा है ?

६–कवि युगवाणी कविता में क्या संदेश देना चाहता है ?

अभ्यास

१–निम्नलिखित पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए—

(अ) पर गये कुछ लोग इस पर छोड़ पैरों की निशानी।
(आ) कौन कहता है कि स्वप्नों न आने दे हृदय में ।
(इ) शैवालों की हरी दरी पर प्रणय कलह छिड़ते देखा है ।
(ई) रजत रचित मणि खचित कलामय'''त्रिपदी पर ।
(उ) हर क्यारी में पदचिह्न तुम्हारे देखे हैं ।
(ऊ) विश्वास सर्वहारा का तुमने'''दरार पड़ जायेगी ।

२–'पथ की पहचान' कविता के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि हमें सफल जीवन-यात्री बनने के लिए क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ?

३–'बादल को घिरते देखा है' कविता में कवि ने जिस अद्भुत प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया है उसे अपने शब्दों में लिखिए ।

४–'युगवाणी' शीर्षक कविता में कवि ने जीवन की जिन वास्तविकताओं का वर्णन किया है और जो चेतावनियाँ दी हैं, उन्हें लिखिए ।

———

परिशिष्ट---१

टिप्पणी

कबीरदास

साखी

(१) एक कह्या प्रसंग=एक सरस बात कही, ज्ञान दिया।

(२) पटतरे=समतुल्य, हौंस=अभिलाषा।

(३) जिनि बीसरि जाइ=भूल न जाना (अन्यथा तुझे फिर संसार चक्र में भटकना पड़ेगा।)

(४) भ्रमि भ्रमि=अनेक योनियों में भटकता हुआ। इवें पड़न्त=इसमें गिर-गिर पड़ता है। उबरंत=बच जाता है, उद्धार होता है। रूपक अलंकार है। नर का प्रयोग सभी जीवों के लिए किया गया है।

(५) आकार=शरीर अर्थात् जीव। आपा मेट=अपने अहं को मिटाकर। जीवत मरै=इच्छाओं और वासनाओं को त्याग दें। जैसे मरने पर उन्हें त्याग देता है।

(६) दूजा दुक्ख अपार=इसके अतिरिक्त सब अपार दुख के कारण हैं।

(७) चित्त चमंकिया=कबीर के हृदय में ज्ञान की ज्योति जग गयी है। लाइ=आग। रूपक अलंकार है। भगवान के स्मरण से ही संसार के कष्टों का निवारण हो सकता है।

(८) झांईं पड़ी=अंधेरा छाने लगा।

(९) सब संसार=विषय-वासना तथा अज्ञान में डूबा सारा संसार। संसार तो अज्ञान में डूबा है अतः निश्चिंत है। कबीर को ज्ञान है अतः वे दुखी हैं।

(१०) मैं था=मुझ में अहंकार था। मैं नाहि=भगवान को प्राप्त करने पर अहंकार नष्ट हो गया। दीपक देख्या माँहि=अन्त:करण में ज्ञान के जलते दीपक के प्रकाश में।

(११) कालिह पर्यूं = कल परसों अर्था् निकट भविष्य में। भ्वैं = पृथ्वी।

(१२) रति = अनुरक्त।

(१३) इहि औसरि = इस अवसर पर जब मनुष्य योनि में जन्म हुआ है। अन्ति पड़ी मुख खेह = अन्त में मुख पर धूल पड़ती ।

(१४) ढबका = धक्का।

(१५) बीछड़ियाँ = बिछड़ जाने पर अर्थात् मृत्यु हो जाने पर। कांचली भुवंग = जैसे साँप केंचुली को छोड़कर उसे फिर नहीं धारण करता।

(१७) दुई मैं कदे न जाइ = जो इस भेद-बुद्धि में नहीं पड़ता।

(१८) सारखे = के समान।

(१९) कुंडलि = नाभि में।

(२०) सोवन = स्वर्ण, सोने के।

(२१) मैमंता = मतवाला। नान्ह करि-करि = बहुत बारीक करके। सुन्दरी = सुन्दरी का प्रयोग आत्मा के लिए किया गया है।

(२२) दुरमति दूरि गँवाइसी = दुर्बुद्धि को नष्ट कर देती है। देसी सुमति बताइ = सद्बुद्धि उत्पन्न करती है।

सबद

(१) माता का रूपक है। जैसे बालक का माता से अत्यधिक सान्निध्य होता है, वैसा ही सान्निध्य कबीर भगवान से अनुभव करते हैं।

न हेत उतारैं = स्नेह नहीं त्यागती। बुधि बिचारी = हृदय में विचार दृढ़ हो गया है।

(२) थिर = स्थिर। चल्या जग जाई = संसार नष्ट हो रहा है। घरि दिया न बाती = घर में कोई दीपक जलाने वाला भी नहीं रहा। कोट = दुर्ग। संगाती = संग में। हाथ झाड़ि ··जुवारी = अज्ञानी जीव जुवारी के समान है जो ईश्वर-प्रेम की पूंजी गवाँ कर संसार से चला जाता है।

(३) डग··मग = मन की अस्थिरता। सिंधौरा = एक विशेष प्रकार का सिंदूर पात्र। अब तो ··सिंधौरा = जिस प्रकार अपने पति के शव के साथ सती होने के लिये उद्यत स्त्री हाथ में सिंदूर-पात्र लेकर जब अपने दृढ़ निश्चय को प्रकट कर देती है

तब वह जल जाना ही श्रेयस्कर समझती है, उसी प्रकार भगवान से प्रेम हो जाने पर, उसका भक्त हो जाने पर तथा अनेकानेक सांसारिक कष्ट मिलने पर भी उसे छोड़ना श्रेयस्कर नहीं है। थै=से। पासी=फाँसी। ते सूचा=केवल वही पवित्र है। गिरत… …ऊँचा=ईश्वर-प्रेम में गिरते-पड़ते भी ऊँचे चढ़ो। (कबीर ने जीवात्मा को सती तथा शूरवीर के समान माना है)।

सूरदास

(१) राइ=राजा। पाइ=पैर।

(२) रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु=ईश्वर का न कोई रूप है, न कोई आकृति है, न उसकी कोई निश्चित विशेषताएँ हैं, न उसकी कोई जाति है और न वह किसी युक्ति से प्राप्त किया जा सकता है। निरालम्ब=बिना किसी सहारे से।

(३) पुनि-पुनि तिहि अवगाहत=बार-बार उसी को पकड़ते हैं। करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल बैठकी साजति=पृथ्वी श्रीकृष्ण के प्रत्येक पद पर प्रत्येक मणि में उनके लिए बैठने को कमल का आसन सजाती है। श्रीकृष्ण के पद कमलवत हैं। अतः उनके प्रतिबिम्ब भी कमल के समान हैं।

(४) कहँ लौ कीजै कानि=कहाँ तक निभायें, कहाँ तक संकोच करें। भानि=तोड़कर। छानि=ढककर, छिपाकर।

(५) दुराइ=छिपाकर। पचि=थककर। बही=भटकती।

(६) बल=बलराम।

(७) आवै मन बहराइ=मन बहला आवे। मारत ताहि रिंगाइ=उसको चला कर थका डालते हैं, क्योंकि वह छोटा है और धीरे-धीरे चल पाता है।

(८) मानहु मकर सुधा रस क्रीड़त=मानो अमृत-रस में मछली क्रीड़ा कर रही है। आपु-आपु अनुरागत=स्वयं अपने से प्रेम करती है।

(९) राखे अँग अँग भोरि=अंग-अंग को मोहित कर लिया है। बँध्यो राग की डोर=राग की डोरी में बँधा है अर्थात् संगीत में लीन हो गया है।

(१०) को लैहै मोंहि लगै बलाइ=कौन ले सकता है? यदि कोई ले तो मुझको बला लगे।

(११) क्रम क्रम करि कै=धीरे-धीरे। अलक लड़ैतो=बहुत दुलारा।

(१२) आसा लागि.........स्वासा=जब तक शरीर में सांस है, तब तक हम आशा करती रहेंगी। सकल जोग के ईस=सब प्रकार से योग साधना में निपुण।

(१३) ना तरु=नहीं तो। तुम तें होइ तौ होइ=हमारा मन श्रीकृष्ण ले गये थे, हो सकता है कि तुम्हारे हाथ उन्होंने लौटा दिया हो। यदि तुम्हारे पास हो तो (हमें वापस कर दो)।

(१४) मष्ट करो=मौन हो जाओ। बूझति बात निदाने=अंतिम बात पूछती हैं। 'तब नैकहुँ मुसकाने' से=तात्पर्य है कि यदि उस समय कृष्ण जरा से मुस्कराये हैं तो निश्चय ही उन्होंने तुमसे हँसी की है।

(१५) करैंगो गाँसी=छल करोगे।

(१६) ईस पुर कासी=महादेव की पुरी काशी। गुन-रासी=गुणों की राशि श्रीकृष्ण।

(१८) उद्धव के वापस लौटने पर श्रीकृष्ण ब्रज-जीवन का स्मरण करके दुःखी हो रहे हैं। सिरात=व्यतीत होते थे। जदु-तात=श्रीकृष्ण।

तुलसीदास

मानस

(१) मुनिहिं सकुचाहीं=विश्वामित्र के सामने अपनी इच्छा व्यक्त करने में संकोच करते हैं। कस न राम तुम राखहु नीती=विश्वामित्र राम को सम्बोधन करके कहते हैं, "हे राम! तुम नीति की रक्षा करने वाले हो। तुम ऐसा क्यों न करोगे?" धरम सेतु.....सुखदाता=प्रेम के वश में होकर सेवक को सुख देना धर्म का कार्य है। राम धर्म का पालन करने वाले हैं। लक्ष्मण के मन में सेवा-भाव है। उनके प्रेम के वश में होकर राम उन्हें सुख प्रदान करते हैं। धरम सेतु में रूपक अलंकार है।

(२) परिकर=कमर में बाँधने का वस्त्र। भाथा=तरकस। अनुहरत=अनुरूप। तापत्रय=दैहिक, दैविक और भौतिक तीन प्रकार के दुख। यहाँ पर मुख की उपमा मयंक से देना अत्यधिक उपयुक्त है क्योंकि चन्द्रमा भी ताप-मोचक है। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी=तिलक की रेखा ऐसी है मानों शोभा मुद्रित कर दी गयी हो। चौतनी=पुरानी चाल की बच्चों की टोपी। मेचक=काले। शोभा सकल सुदेस=जहाँ जैसी शोभा चाहिए वहाँ वैसी शोभा है।

(३) पटतरिय=समता करूँ।

(४) रामचन्द्रजी ने ऋषियों के आश्रम में राक्षस मारीच का वध करके उनके यज्ञ की रक्षा की थी। काछे=बनाये हुए। मुनि बधू=गौतम मुनि की पत्नी, अहल्या, चाप मख=धनुष यज्ञ।

(५) संघट्ट=संयोग, पुराकृत=पूर्वजन्म का।

(७) गज ढारी=ढली हुई फर्श।

(९) सचु=सुख। अरुन शिखा=मुर्गा।

विनय पत्रिका

(१) इस पद में तुलसीदास सीता माता से प्रार्थना कर रहे हैं कि उपयुक्त अवसर पर आप रामचन्द्रजी को मेरा स्मरण करा दें। द्याइबी=दिला दीजिए। अघी=पापी। अघाइ=भरपूर। प्रभुदासी दास=तुलसी दास ('तुलसी' भगवान की दासी है उसके दास हैं।)

(२) देह गेह नेह……घनदामिनी=मनुष्य का अपने शरीर अपने घर और अपने प्रेमी तथा परिवार के लोगों से वैसा ही अल्पकालिक सम्बन्ध है जैसा बादल का बिजली से होता है। मनुष्य इस सम्बन्ध को स्थायी समझ लेता है। संसृति…संताप=सांसारिक दुख जो स्वप्न की भाँति मिथ्या है। मृगवारि=मृग-तृष्णा। जेवरी को साँप=रस्सी को साँप समझ लेता है, भ्रम में पड़ा रहता है।

(३) जाहि=जिससे। कहौं हौं=मैं कहता हूँ। तोहि माँगि मागनो न माँगनो कहायो=तुमसे माँगने वाला याचक, याचक नहीं कहलाता। पाहन से अहल्या की ओर संकेत है। पसु से गजराज की ओर संकेत है। विटप से यमलार्जुन तथा विहंग से जटायु की ओर संकेत है।

(४) सहसबाहु=हैहय वंश का राजा सहस्रार्जुन जिसे परशुराम ने मारा था। बुझै न काम अगिन……बहु घी ते=जिस प्रकार आग में घी डालने से वह शान्त नहीं होती, और अधिक प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार भोग-विलास करने से मनुष्य की वासनाएँ शान्त नहीं होतीं, वरन और बढ़ती हैं।

(५) द्रवै=द्रवित हो जाय, हृदय करुणा से भर जाय।

(६) बराय विरद=यश अपयश की चिन्ता न करके। कवन सुर तारे=किस देवता ने तार दिये। कहा अपुनपौ हारे=अपने को सौंप देने से क्या होता है?

गीतावली

(७) सगुन मनाना=सगुनौती डालना। अवधि समीप जानि=श्री राम के

वनवास की अवधि समाप्त होने वाली थी। इस कारण कौशल्या के हृदय की व्याकुलता बढ़ रही थी। गनक = ज्योतिषी।

वन पथ पर

(१) पुर तें = शृंगवेरपुर से। पुट सूखि गये मधुराधर वैं = दोनों मधुर ओठ सूख गये।

(२) परिखौ = प्रतीक्षा करो। घरीक = एक घड़ी। भूमुरि डाढ़े = गरम धूल से जले हुए। श्रम जानि कै = थकी हुई समझकर।

(३) नौ = नव, नवीन। सायक = वाण। आनि = लाकर। जड़ डारिहैं प्राण निछावरि कै = जड़ प्राणों को निछावर कर दूंगी। स्रम-सीकर = पसीने की बूँदे। रासि महातम तारक मैं = मानो अन्धकार के समूह में तारों की राशि शोभा पा रही है।

(४) मोहिं सी ह्वै = मेरी तरह तन्मय होकर।

(५) बिधु बैनी = चन्द्रमुखी, विधु वदनी। रंचक = थोड़ा सा।

(६) अजानी = अज्ञानी। पवि = वज।

(७) तून = तरकस।

(८) अनुराग तड़ाग में = प्रेम के सरोवर में।

मीरा

(१) मकराकृत = मछली की आकृति के। रसाल = रस से पूर्ण, कानों को मधुर प्रतीत होने वाला।

(२) लिए करवत कासी = (कासी करवट लेना) मोक्ष प्राप्त करने के लिए काशी जाकर अपने शरीर को आरे से चिरवा कर जीवन का अन्त करना (ऐसा हठयोगी करते थे)। चहर की बाजी = चौपड़ा का खेल। जुगति = युक्ति (ईश्वर को प्राप्त करने की)। उलटि जनम फिर आसी = बार बार जन्म लेता है।

(४) छाने = छिपाकर, आँख बचाकर। बजंता ढोल = ढोल बजाकर, घोषणा करके, प्रकट रूप में। मुंहघो = मँहगा। सुंहघो = सस्ता। तराजू तौल = नाप जोखकर। अमोलक मोल = अत्यधिक मूल्य देकर।

(५) जनकी भीर = भक्त का कष्ट, संकट। बाढ्यो = बढ़ाया। सीर = सिर।

(७) की जिण लाई होय = अथवा वह जिसके हृदय में प्रेम की अग्नि लगी है।

"पर वीर मिले बिछुरे की बिथा मिलिकै बिछुरे सोइ जानतु है" में यही भाव व्यक्त किया गया है। की जिन जौहर होय = अथवा वह जिसके पास रत्न है। सूली ऊपर सेज हमारी = मीरा की सेज सूली के समान कष्टदायक है। वह कृष्ण के वियोग की असीम वेदना का अनुभव दिन-रात करती है। गगन मण्डल पर सेज पिया की = कृष्ण की सेज आकाश मण्डल में है, जहाँ पहुँचना कठिन है। जद = यदि, जव।

(८) बाँची = बची। खारी = खारा तत्त्वहीन।

(१०) ऊँड़ी = गहरी। चौंहटे = चौराहे। सुरत = भगवान का स्मरण। ज्ञान चौरस मँढ़ी चौंहटे सुरत पासा सार = संसार रूपी चौराहे पर ज्ञान की चौपड़ बिछी हुई है। इस खेल में मीरा भगवान के स्मरण का पाँसा फेंकने का उपदेश देती हैं। भगवान का स्मरण करने से ही इस संसार में जीवन सफल हो सकता है।

नरोत्तमदास

सुदामा श्रीकृष्ण के सहपाठी थे। उज्जयिनी में संदीपन गुरु के आश्रम में दोनों ने साथ साथ शिक्षा प्राप्त की। सुदामा द्वारका के दक्षिण में सुदामापुरी में रहते थे। आज कल सुदामापुरी का नाम पोरबन्दर है।

सुदामा निर्धन थे और भिक्षा द्वारा जीविका निर्वाह करते थे। एक दिन सुदामा से उनकी पत्नी ने सुना कि श्रीकृष्ण उनके सहपाठी हैं। इतना ज्ञात होते ही वह सुदामा के पीछे पड़ गयी और श्रीकृष्ण के पास जाने के लिए उनसे आग्रह करने लगी।

सुदामाचरित में पति पत्नी के तर्क वितर्क का सजीव चित्रण है।

(३) कोदों, सवाँ = सस्ते प्रकार के मोटे अन्न। पेलि = जबरदस्ती ढकेल कर।

(७) जक = धुन, अड़।

(८) चटसार = पाठशाला।

(१०) कनावड़ो = कृतज्ञ।

(११) छरिया = द्वारपाल।

(१२) पौर जन = नागरिक।

(१३) सामा = सामर्थ्य डौल।

(२३) वैसोई = उसी प्रकार का जैसा द्वारका में था। श्रीकृष्ण ने सुदामा को वैसा ही वैभव-सम्पन्न कर दिया जैसे वे स्वयं थे। सम्भ्रम = भ्रम में पड़ना। मन लोचत = मन लालायित होता है। खोज न पायो = कहीं खोज नहीं मिला।

(२४) जर तारी = जिस पर सोने के तारों से सजावट की गयी है।

रहीम

(२) दून = दोगुना। जरदी = पीलापन। चून = चूना।

(३) टूटे सुजन = सज्जन व्यक्ति के नाराज होने पर।

(६) छोह = प्रेम।

(७) गोय = छिपाकर। अठिलैहैं = हँसी उड़ायेंगे।

(८) पर छवि = किसी अन्य का सौन्दर्य। ठहराय = स्थिर बना रहे।

(१०) विलगाय = अलग।

(११) रहिला = चना।

(१२) स्वाँति नक्षत्र की वर्षा का बूंद जब केले में पड़ता है तो कपूर, सीप में पड़ता है तो मोती और सर्प के मुख में पड़ता है तो विष बन जाता है। ऐसी कवि मान्यता है।

(१३) विषान = सींग।

(१५) नर धन हेत समेत = रीझ पाने पर मनुष्य प्रेम के साथ धन देता है।

(१७) गोत = गोत्र, कुल।

सोरठा तथा बरवै

रूपे = चाँदी। अरघा = शालिग्राम रखने का एक विशेष आकार का आसन।

दिसि बिदिसान = सभी दिशाओं में। करत पयान = यात्रा करते हैं। देखत ही सखि-बूड़त, दृग जलजात = देखते ही कमल के समान नेत्र भी डूब जाते हैं (कमल का फूल कभी जल में डूबता नहीं)। छितब = पृथ्वी।

रसखान

(१) हौं = होऊँ। जो धर्‌यो कर छत्र पुरंदर धारन = इन्द्र की मूसलाधार वृष्टि से व्रज को बचाने के लिए श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत छत्र की भाँति हाथ पर उठा लिया था।

(२) रई = प्रेम में डूब गयी। वाको = उसका पुत्र, यशोदा के पुत्र, श्रीकृष्ण। हमेलनि हार = गले में पहनने के आभूषण। ज्यौ = प्राण। छौनहिं = पुत्र को।

(३) कोटी = कोटि, करोड़।

(४) ठैया = स्थान। सिगरी बनिता सब = सब की सब, स्त्रियाँ एक साथ। कानि = मर्यादा। चेटक = जादू।

(५) गोधन = व्रज प्रदेश में गाया जाने वाला एक प्रकार का गीत। वीर = हे सखा!

(६) गैहै तो गैहै = यदि गायें तो गायें। सम्हारी न जैहैं न जैहैं न जैहैं = किसी प्रकार भी न संभाली जायगी। कवि ने "न जैहैं" का तीन बार प्रयोग करके अपने कथन को बल दे दिया है। जैसे "मधुमास में दास जु बीस बिसै मन मोहन आईहैं, आइहैं, आइहैं।" भाव चमत्कार के साथ भाषा का सौन्दर्य भी बढ़ गया है। सुदामाचरित में भी इसी प्रकार का प्रयोग है। "द्वारका जाहुजू द्वारका जाहुजू आठहु याम यहै जक तेरे।"

(७) दहिहै = जलायेगी।

(८) अधरा मुसकानि तरंग = ओठों पर मुसकान लहरा रही है।

(९) कृष्ण के वियोग में व्याकुल गोपियाँ अपने को सन्तोष देने के लिए कृष्ण की लीलाओं का अभिनय करती हैं। एक गोपी कृष्ण का रूप धारण करने की योजना बना रही है। भावतो वोहि मेरो रसखानि = मेरे कृष्ण को जो प्रिय है। जो कुछ भी उनको रुचिकर है। स्वांग करौंगी = रूप बनाऊँगी, अभिनय करूँगी। अधरान धरी अधरा न धरौंगी = (१) अधरों पर रखी हुई मुरली को मैं अपने अधरों पर न रखूँगी। (२) (तेरे कहने से) कृष्ण के ओठ पर रखी हुई मुरली को अपने ओठों पर रख लूंगी।

(१०) तटिनी = नदी, यमुना।

(११) नल = प्रवाह, जलधारा। लबार = झूठा। बयार-व्रत = प्राणायाम।

बिहारी

(१) भव-बाधा = संसार के विघ्न जो मनुष्य को जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने नहीं देते। झांईं = प्रतिविम्ब, किंचित् दर्शन (झलक)। स्याम = श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण, काला रंग। हरित दुति = हरी कांति। प्रसन्न-वदन राधा के स्वर्णिम शरीर की झाईं पड़ने से। (१) श्रीकृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं। (२) नीला रंग-हरा हो जाता है।

(२) चन्द्रिकनु = चन्द्रिकाओं से। मोर पंख पर चमकते रंगों का जो चन्द्राकार चिह्न होता है, चन्द्रिका कहलाता है। ससि सेखर = महादेवजी। अकस = ईर्ष्या से। श्रीकृष्ण कामदेव के समान सुन्दर हैं। कामदेव अपने जलाने वाले महादेव को अपना शत्रु समझता है। महादेव के मस्तक पर चन्द्रमा शोभित है। उनसे बैर के कारण मानो

कामदेव (श्रीकृष्ण) ने सौ चन्द्रमा अपने मस्तक पर सजा लिये हैं।

(३) आतप=धूप

(४) पट=पीताम्बर। होठ की ज्योति लाल, दृष्टि की ज्योति नीली तथा पीताम्बर की ज्योति पीली होती है। जब हरे रंग की बाँसुरी पर यह सब रंग प्रतिबिम्बित होते हैं तब वह इन्द्रधनुष के समान रंग-बिरंगी हो जाती है।

(५) बर जीते=बरबस जीत लिया है। सर मैन के=कामदेव के बाणों को। हरि नीके ये नैन=हे हरि, राधा के नेत्र श्रेष्ठ हैं।

(६) बूड़े स्याम रंग=श्रीकृष्ण के प्रेम में डूबता है। उज्जलु होय=सफेद हो जाता है, पवित्र हो जाता है। इस दोहे में कवि ने चमत्कार यह दिखलाया है कि प्रेम करने वाले चित्त को श्याम रंग में डूब कर श्याम वर्ण का ही हो जाना चाहिए पर वह उज्ज्वल हो जाता है। जब रचना में विरोध के द्वारा इस प्रकार चमत्कार उत्पन्न किया जाता है तो उसको 'विरोधाभास' अलंकार कहते हैं।

(७) विकट जटै=दृढ़ता से बन्द। जौ लगु=जब तक। निपट=अत्यन्त। खुटैं=खुले।

(८) या विरिया नहिं और की=किसी अन्य के स्मरण का यह अवसर नहीं है। करिया=कर्णधार, नाविक। सोधि=खोज, स्मरण कर। रामचन्द्रजी ने करोड़ों भालुओं और बन्दरों को पत्थर की नाव पर चढ़ा कर (पत्थरों का पुल बनवा कर) समुद्र पार करा दिया था।

(९) दई-दई=हा दैव हा दैव,। दई दई=दैव ने जो दिया। सुकबूल=स्वीकार कर। दई दई का दो बार भिन्न अर्थों में प्रयोग किया गया है। यमक अलंकार है।

(११) बानक=भेष। बिहारीलाल=श्रीकृष्ण (जो चारों ओर सदा विहार करते हैं उनको कवि अपने नेत्रों में स्थिर करके बसा लेना चाहता है।)

(१२) सरै=सिद्ध होता है। मन कांचे=कच्चे मन वाला, जिसके मन में सच्ची भक्ति नहीं। नाचै=भटकता है। साँचे राँचै राम=राम तो सच्ची भक्ति वाले से ही प्रसन्न होते हैं।

(१३) निरधार=निश्चय। यह जगु काँचो काँच सौ=यह कच्चा (असत्य) संसार कांच के समान है। एकै रूप=ईश्वर का एक ही रूप। अपार=अनन्त रूपों में।

(१४) अरुन सरोरुह कर चरन=लाल कमल ही जिसके हाथ और पैर हैं। दृग खंजन=खंजन जिसके नेत्र हैं। समय आइ=समय आने पर। सुन्दरि सरद=सुन्दरी रूपी शरद। सुन्दरी का शरद ऋतु पर भेद रहित आरोप है। अतः रूपक अलंकार है।

(१५) कहलाने=व्याकुल। एकत=एकत्र होकर। तपोवन=तपस्वियों का वन, जहाँ उनके प्रभाव से जीव-जन्तु परस्पर वैर-भाव छोड़कर रहते हैं। दीरघ=दीर्घ, प्रचंड। दाघ=गर्मी। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु।

(१६) बैठि रही=विश्राम ले रही है। सदन तन=घर की सीमा में। (छाया घर की दीवालों के बाहर नहीं जाती)। चाहति छाँह=आच्छादन चाहती है। जेठ के दिनों में जब दोपहर के समय सूर्य सर पर चमकता है तब वृक्षों की छाया उनके नीचे ही पड़ती है। घरों की छाया भी उनकी छतों के नीचे ही पड़ती है।

(१७) रह्यो भेद नहि आनु=अन्य कोई भेद नहीं रह गया।

(१८) बरु=चाहे। चोल रंग=विशेष प्रकार की लकड़ी से बनाया लाल रंग।

(१९) दुख दंदु=दुखों की अतिशयता। मिलि=एक राशि में आकर। मावस=अमावस्या की रात में।

(२१) संगति=सज्जनों की संगति से। धंध=धंधा, झंझट, चक्कर। मेलि=मिलाकर।

(२४) चटक=चटकीलापन। रज-राजस=रजोगुण रूपी धूल, बड़प्पन रूपी धूल। नेह चीकने=स्नेह से चिकने, तेल से चिकने।

(२५) गनै=सम्भावना करते हैं, आशंका करते हैं।

(२६) निसकहीं=शक्तिहीन को ही।

(२७) गलीत ह्वै=अपनी दुर्दशा बना कर।

(२८) आब=कान्ति, प्रतिष्ठा।

(३०) यह अन्योक्ति है। बाज का प्रयोग मिर्जा राजा जयसिंह के लिए किया गया है और पचछीनु का प्रयोग उन राजाओं के लिए किया गया है जिन पर राजा जयसिंह आक्रमण करते थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

कूकै लगीं कोयलें : इस कविता में वर्षा के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं जैसे कदम्ब के पेड़ पर कोयल का बोलना, वृक्ष के पत्तों का वर्षा के जल से धुल कर निर्मल हो जाना,

मेढ़कों का टर्र-टर्र करना, मोरों का नृत्य करना, भूमि पर हरियाली छा जाना तथा बादलों का झुक-झुक कर बरसना। वर्षा का सौन्दर्य वियोगियों के लिए दुःखदायी होता है। इस कविता में भी वर्षा को वियोगिनी के लिए दुःखदायी कहा गया है।

जिय पै जु होय···अधिकार : उद्धव के प्रति गोपियों की उक्ति है।

यह संग में लागिये डोलैं सदा : कृष्ण के प्रति गोपी की उक्ति है। संयोग और वियोग दोनों दशाओं में गोपी की आँखें दुखी हैं।

चाल प्रलै कि सु ठानती हैं=आँखों से इतने आँसू निकलते हैं कि प्रलय काल के समान जल ही जल हो जाता है। उझपै=खुलना।

पहिले बहु भांति : श्रीकृष्ण से मिलन न होने पर गोपी द्वारा सखियों के प्रति उपालम्भ है।

ऊधो जु सूधो गहो : गोपियों की उद्धव के प्रति उक्ति है।

सखि आयो बसंत·········। वसंत ऋतु में वियोगिनी के दुख का वर्णन है। ऋतून को कंत=ऋतुराज। गर सों=आकंठ, पूरी तरह। परसों= (१) आगामी कल से आगे वाला दिन (२) स्पर्श करूंगी।

बीती जानि औधि=प्रियतम के आने की अवधि समाप्त हो गयी, यह जान कर। ये तो=आँखें। मृत्यु के समय प्रायः आँखें खुली रह जाती हैं, उसी पर यह उक्ति है।

दोहे=ये दोहे भारतेन्दुजी ने अपने एक भाषण में कहे थे।

श्रीधर पाठक

'कश्मीर सुषमा'

इस कविता में कवि ने 'पृथ्वी के स्वर्ग' कश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य को मानवीकरण के द्वारा चित्रित किया है। प्रकृति को एक सुन्दरी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

पलटति भेस=वेष परिवर्तन करती है। अम्बुसर मुकुरन-मँह मुख-बिम्ब निहारति=स्वच्छ सरोवर रूपी दर्पण में मुख बिम्ब देखती है। मोहि=मोहित होकर। सुठि=(सुष्ठु), सुन्दर, श्रेष्ठ। चित्तरसारी=चित्रशाला। किंकरता=दासता। पंकज चरनन की=कमल-चरणों की। मौलि-अवलि=उच्चतम चोटियों की पंक्ति। द्रवत सरित सित धार=नदी की श्वेत धारा प्रवाहित होती है। द्रवत सोई चन्द्रहार जनु=मानो चन्द्रहार ही द्रवित हो गया है। उदित भई मनु अवनि उदर-सों=मानों भूमि के गर्भ से उत्पन्न हुई। सेली=दुपट्टा। चन्दन धौरि=श्वेत चन्दन की। खौरि=मस्तक

पर आड़ा तिलक। स्रैनिन=श्रेणियाँ। वितस्ता=झेलम नदी का प्राचीन नाम। आभा भ्राजति=कान्ति शोभायमान है। अद्रिमंडल=पर्वत समूह। रूरौ=शोभित है। द्रोनाकार=दोने के आकार का, घाटी के आकार का। नैसर्ग=प्रकृति का। निकाई=सुन्दरता। कै=अथवा, किधौं आदि शब्दों के प्रयोग से कवि ने एक वस्तु में अनेक वस्तुओं की सम्भावना की है जो कि अनिश्चयात्मक है, अतः यह संदेह अलंकार का वाचक है। माया मालिनी=माया रूपी मालिन ने। रवि-हय=सूर्य के घोड़े। ब्रह्मद्रव-द्रौनी=गंगाजल से भरा दोना। द्रौनी=दोना, दो पहाड़ों के मध्य की घाटी।

'वनाष्टक'=वन के ऊपर आठ छन्दों की रचना है। इस संग्रह में वनाष्टक के केवल दो छंद संगृहीत हैं। पहले में ग्रीष्म का और दूसरे में शरद का वर्णन है। ग्रीष्म ऋतु में प्रकृति का रूप प्रचंड तथा दुःखदायी हो जाता है पर उसका भी अपना सौन्दर्य है। कवि ने पहले छन्द में उसके इसी सौन्दर्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

दारुण आतप=विकट गर्मी, धूप। तप के=जलकर। दल=सेना। भानुकला=सूर्य की किरणें। घटा=(१) बादल (२) कम हो गया। शारदी-चन्द्रिका=शरद की ज्योत्स्ना। समलंकृत=सुसज्जित।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

समवेत=एकत्र। दिनान्त=दिन के अन्त में, संध्या को। कलवेणु=मधुर मुरली। विपुल-धेनु विमंडित=अनेक गायों से शोभायमान। ककुभ=दिशा। लसे=शोभायमान हुए। कदन=नष्ट करके। विलसता=शोभित होता। नलिनीश=सूर्य। अतसि पुष्प अलंकृतकारिणी=अलसी के फूल से भी अधिक सुन्दर। शरद नील-सरोरुह रंजिनी=शरद काल के नील कमल को भी अनुरंजित करने वाली, उसे सौन्दर्य प्रदान करने वाली।

नवल सुन्दर श्याम शरीर की सजल नीरद-सी कलकान्ति थी=बालक श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के नूतन शरीर की सुन्दर शोभा जलभरे बादल के समान थी। कल दुकल=सुन्दर दुपट्टे से। मकर-केतन=कामदेव, कामदेव की ध्वजा में मछली का चिह्न अंकित है, अतः वे मकरकेतन कहलाते हैं। कलकेतु=सुन्दर ध्वजा। अलकावली=केश समूह। क्षिति छू तन की छटा=शरीर की शोभा पृथ्वी तल का स्पर्श कर फैल रही थी। क्षितिज=धरती और आकाश जहाँ मिलते हुए दृष्टिगत होते हैं। क्षणदाकर=चन्द्रमा।

मैथिलीशरण गुप्त

अयोध्या की नर-सत्ता

संजीवनी बूटी के लिए हनुमान जब आकाश-मार्ग से जा रहे थे, तब भरत ने उन्हें राक्षस समझकर अपने बाण से आहत कर गिरा दिया। सचेत होने पर हनुमानजी ने राम-राण युद्ध का सारा वृत्तान्त संक्षेप में सुनाया। भरत तत्काल लंका-प्रस्थान करने का निश्चय करते हैं। रात्रि में ही सैनिकों को एकत्र करने के लिए शत्रुघ्न शंख-ध्वनि करते हैं जिसका प्रत्युत्तर भरत भी शंख-ध्वनि द्वारा देते हैं।

कम्बु=शंख। रणभेरी=युद्धसूचक तुरही। तरंग-भंग=लहरों का टूटना। अरर=दरवाजा। रव स्फुटों=विभिन्न ध्वनियों से। उरः पुटों=हृदय रूपी आवरण। पंचानन=सिंह, शंकर। गिरिगुहा=कैलाश पर्वत और गुफा। माण्डलिक=मण्डल का स्वामी, छोटा राजा। धात्रियाँ=माताएँ। मानसमोती=हृदय रूपी सरोवर के मोती। रघु-सगर-नगर=रघु और सगर नाम के सूर्यवंशी राजाओं का नगर, अयोध्या। बगर उठे=फैल गये। अगर-तगर से=सुगन्धित पदार्थ के सदृश।

यशोधरा

पण=प्रतिज्ञा। क्षात्र=क्षत्रिय।

पंचवटी

अंतिम चार छंद लक्ष्मण के आत्म-कथन हैं।

जयशंकर 'प्रसाद'

आह्वान-गीत

यह गीत 'चन्द्रगुप्त' नाटक से लिया गया है। विश्व-विजेता सिकन्दर और उसके सेनापति सिल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया था। चन्द्रगुप्त ने उसे पराजय का पाठ पढ़ाया और भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया। युद्ध के अन्तिम चरण में गांधार नरेश की पुत्री 'अलका' देशवासियों में जागरण का शंख फूंकती हुई यह गान गाती है।

अमर्त्य=अमर। प्रशस्त=फैला हुआ, विशाल। विकीर्ण=फैली हुई। अराति=शत्रु। सुवाडवाग्नि=समुद्र स्थित अग्नि।

असंख्य कितिरश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह सी=अनगिनत यश की किरणें अलौकिक अग्नि-सी आलोकित हो रही हैं। अराति सैन्य सिंधु में सुवाडवाग्नि से जलो=

शत्रु की सेना रूपी सागर में वडवानल की भाँति जल उठो, अर्थात् शत्रु को तहस-नहस कर डालो। शत्रु की सेना में सागर का आरोप होने से रूपक अलंकार है। सुवाड-वाग्नि से जलो में उपमा है।

वसंत की प्रतीक्षा

मल्लिका पुंज=मल्लिका (मोतिया, बेले की जाति का एक फूल) के फूलों वाला कुंज (मल्लिका ग्रीष्म और वसंत ऋतु में फूलती है) मधुराका=पूर्णमा की रात। मूक हो मतवाली ममता=हर्ष की अधिकता से हृदय में स्थित प्रेम की भावना मानों गूँगी हो जाय। अनुप्रास हैं। चेतना बने अधीर मिलिन्द=सुध-बुध खोकर भौंरे की भाँति चंचल हो उठे। मदिरा मकरंद=फूलों की शहद रूपी मदिरा। रूपक है।

कामायनी

मनु श्रद्धा पर अपना पूर्ण अधिकार चाहते थे। श्रद्धा के मन में भावी संतति के प्रति प्रेम को पल्लवित होते देख कर वे असंतुष्ट हो श्रद्धा को निराश्रित छोड़कर चले गये।

श्रद्धा अपने पुत्र के साथ जीवन यापन कर रही थी। एक रात्रि उसने स्वप्न में मनु को घायल, मरणासन्न अवस्था में देखा। उसी स्वप्न से प्रेरित होकर वह मनु को खोजने के लिए चल पड़ी।

साल रही=चुभ रही है, कसक रही है। वह पुकार जैसी जलती=श्रद्धा की पुकार दुःख के दाह से जलती हुई-सी प्रतीत होती थी। विशृंखल=अस्त व्यस्त, बिखरे हुए। कवरी=जूड़ा, केशों का समूह। छिन्न-पत्र मकरंद लुटी-सी ज्यों मुरझाई हुई कली=जिसकी पंखुड़ियाँ बिखर गयी हों और मधु लुट चुका हो ऐसी मुरझाई कली के समान श्रद्धा थकी हुई, टूटी हुई थी। उपमा अलंकार है।

घुला हृदय बन नीर बहा=वेदना से द्रवित होकर मानो हृदय आँसुओं के रूप में बह निकला। अनुलेपन=उबटन, किसी तरल पदार्थ का लेप करना।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

कनक=सुवर्ण (सम्पन्नता)। शस्य=अन्न। कमल=भारतीय संस्कृति का प्रतीक (फूल)। लंका पद तल शतदल=चरण कमलों के नीचे लंका स्थित है।

गर्जितोर्मि=गर्जित+ऊर्मि=गरजती हुई लहरें। शुचि=पवित्र। युगल=दो। स्तव=स्तुति। बहु अर्थ भरे=बहुत से अर्थों से पूर्ण। खचित=कढ़े हुए, निकाले हुए। ज्योतिर्जलकण=प्रकाशमय जलकण, चमकते हुए जलकण। हिम तुषार=बर्फ और पाला। प्रणव=ओंकार, परमेश्वर त्रिवेद (ब्रह्मा, विष्णु, महेश)। ओंकार=ओ३म् का मंत्र। ध्वनित=गुंजरित, शब्दायमान। शतमुख=सैकड़ों मुखों से। शतरव=सैकड़ों स्वरों में। मुखरे=निनादित, ध्वनि से पूर्ण।

पहला अरविन्द=इसके दो अर्थ हो सकते हैं। (१) उपवन में पहला कमल खिला। (२) पहला लाल मुख वाला सूर्य (ज्ञान का प्रतीक) निकला—पहला इसलिए कि इस दिन ही कवि को धर्म का आडम्बर पूर्ण स्वरूप देखकर ज्ञान हुआ है।

अनिंद्य=प्रशंसनीय, निर्दोष। सौरभ-वसना=सुगन्धि के वस्त्र धारण किये, रूपक है। कानों में प्राणों की कहतीं=प्रेम का सन्देश दे रही है। क्षीण कटि=पतली कमर वाली (अर्थात् पतली धारा वाली)। नटी नवल=नवीन युग वाली नर्तकी। पर्यटनार्थ=घूमने के लिए। सदया=दया से पूर्ण। कृष्ण काय=काले शरीर वाला। मृत्यु प्राय=मृत्य के समीप। दूर्वादल=हरी घास। मज्जन=स्नान। इतर=दूसरा, अन्य।

अट्टालिका=बड़े, विशाल भवन। प्राकार=प्राचीर, परकोटा। दिवा=दिन। छिन्नतार=टूटी हुई, खण्डित।

सुमित्रानंदन पंत

विरल=पतली, जो घनी न हो। तम के तागे सी=चींटी की पंक्ति के रंग और पतलेपन की ओर संकेत है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई काला धागा पड़ा हो। उपमा है। पिपीलिका=चींटी।

गाय चराती धूप खिलाती=प्राणि-शास्त्र के विद्वानों का कथन है कि चींटियों में भी गायें होती हैं और चींटियाँ ही उनको चराने जाती हैं।

श्रमजीवी=परिश्रम करके जीने वाले।

भूरे बालों की सी कतरन=चींटी के लिए एक सर्वथा नवीन उपमान। उपमा। चिनगी=चिनगारी, अग्नि-कण। प्राणों की रिलमिल झिलमिल सी=चींटी छोटी हैं परंतु अत्यंत जीवन पूर्ण, शक्ति से भरी हुई-सी इधर-उधर घूमती-फिरती रहती है। उपमा।

कलदार=रुपया, धन। अपलक पाँवड़े बिछाकर=अभिप्राय है कि कवि

अपनी कल्पनाओं को पाँवड़े की तरह बिछाकर रुपयों के पेड़ उगने की प्रतीक्षा करता रहा। तृष्णा=प्यास, कामना। अर्धशती=आधी शती, पचास वर्ष। डिम्ब=अण्डा। अभ्यागत=अतिथि। रत्न-प्रसविनी=रत्नों को जन्म देने वाली। सच्ची......बोने हैं=वर्ग भेद को मिटा कर, मनुष्य-मनुष्य में बराबरी स्थापित करनी है। जन की क्षमता=मनुष्य की कार्य-शक्ति, परिश्रमशीलता।

अणु-युग बने धरा जीवन हित=विज्ञान का सम्पूर्ण विकास मानव के कल्याण के लिए प्रयुक्त हो। धरा चन्द्र की......पुरातन=पृथ्वी तथा चन्द्रमा का प्रेम बहुत पुराना है। एक विश्वास के अनुसार चन्द्रमा पृथ्वी का ही एक टुकड़ा था जो टूट कर अलग छिटक कर जा गिरा। आज भी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा को देखकर सागर में ज्वार आ जाना मानों इसी प्रेम का प्रमाण है।

महादेवी वर्मा

स्वर्ण रश्मि=सुनहरी किरण। सेली=एक प्रकार की माला, छोटा दुपट्टा। परिमल=सुवास, खुशबू। बतास=(वातास) वायु। रागहीन=आसक्ति रहित। क्षार=राख, धूल। कुलिश=वज्र। झंझा=तूफानी हवा। घन-केश-पाश=बादल रूपी बालों का समूह। बादल में केश-राशि का आरोप होने से रूपक अलंकार है। नभ गंगा=आकाश गंगा। रजत धार=चांदी जैसे शुभ्र, जल की धारा। सद्य स्नात=तुरंत का नहाया हुआ। लास=नृत्य। अंजन=काजल। दुकूल=दुपट्टा। चल=चंचल, थरथराते हुए। जुगनू के स्वर्ण फूल=जुगनू रूपी सुनहरे रंग के फूल। रूपक अलंकार है। देता बार-बार=जला देता है। चितवन विलास=दृष्टि की भंगिमा। उच्छ्वसित=जोर से खींचीं साँस के कारण हिलता हुआ, प्रसन्न, गद्गद। अरविन्द=कमल। बक पाँतों का अरविन्द हार=बगुलों की पंक्ति मानो सफेद कमलों की माला है। रूपक। केकी रव=मयूरों का शब्द। जगती जगती की मूक प्यास=एक जगती का अर्थ है, जागरित होना, दूसरी जगती का अर्थ है संसार। अतः यमक अलंकार है। सस्मित=मुस्कान युक्त। शिशु जग=संसार को वर्षा का शिशु माना है। संसार में शिशु का आरोप होने से रूपक है।

रामकुमार वर्मा

अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर :

इस गीत में कवि ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। प्रकृति के सौन्दर्य में अपनी आत्मा के समान एक चेतन सत्ता की छाया का आभास प्राप्त करना ही हिन्दी काव्य में छायावाद कहलाया। कवि-आत्मा किसी अव्यक्त निस्सीम सत्ता से प्रेम

करती है। इसलिए वह समझता है कि निर्झर का भी कोई अविदित प्रेमी है जिसके पद-रज-कन धोने के लिए वह प्रवाहित है।

किसे सुनाते सुमधुर स्वर ?=कवि के मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही है। वह निर्झर के उस प्रेमी के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहता है। जिसको प्रसन्न करने के लिए निर्झर दिन-रात कल-कल ध्वनि से गान करता रहता है। इसी प्रकार की जिज्ञासा गोपाल शरण सिंह ने निम्न पंक्तियों में व्यक्त की है—

"किसके विरह में रुदन करते हैं सदा
झरने अकेले इस प्रकृति भवन में।"

विरह व्यथा में अश्रु बहाकर=कवि की आत्मा परमात्मा के विरह की वेदना अनुभव करती है। इसीलिए वह कल्पना करता है कि अपने प्रवाह के द्वारा निर्झर भी अपने प्रियतम के वियोग में आँसू बहा रहा है।

जलमय कर डाला सब तन=वियोग के आँसुओं के कारण ही निर्झर जलमय शरीर वाला बन गया है।

अविदित प्रेमी=वह प्रेमी जिसकी पूरी जानकारी न हो। यहाँ पर अव्यक्त परमात्मा की ओर संकेत है।

लघु पाषाणों के टुकड़े=जीवन-मार्ग में आने वाली सामान्य कठिनाइयाँ। इन कठिनाइयों से विचलित होकर मनुष्य एक क्षण के लिए अपना मार्ग भूल कर रुक जाता है।

कौन तुम्हें पथ बतलाता है=मनुष्य ईश्वर-प्रेम के मार्ग में अपनी अन्तःप्रेरणा से अग्रसर होता है। उसे कोई मार्ग नहीं प्रदर्शित करता।

अविचल=स्थिर।

पल-पल प्रेमी के मन में गूंजे ए कातर निर्झर=कवि चाहता है कि उसकी जीवात्मा की ध्वनि परमात्मा के अन्तर्जगत् में गूंज उठे। इसी कारण कवि ने कामना की है कि निर्झर की कल-कल ध्वनि उस के प्रियतम के मन में गूँजती रहे।

प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊँ :

इस गीत में कवि परमात्मा के प्रति अपनी प्रेम-भावना को व्यक्त करता हुआ कहता है कि जीवात्मा परमात्मा से बिछड़ जाने के कारण व्यथा का अनुभव कर रही है। ऐसी स्थिति में वह अपनी अभिलाषाओं को भी नहीं व्यक्त कर पाती।

इस रहस्यवादी गीत में कवि ने यह बताया है कि किस प्रकार उसकी आत्मा आराध्य के प्रेम में निश्छल रूप से तन्मय है।

रहस्यवाद आत्मा की उस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह अपना अविछिन्न और निश्छल सम्वन्ध निस्सीम सत्ता के साथ स्थापित करती है।

शब्दों के अधखुले द्वार से अभिलाषाएँ निकल न पातीं=कवि अपनी इच्छाओं को अपने शब्दों से व्यक्त नहीं कर पाता।

स्वप्न संकेत=परमात्मा से भौतिक जगत् में मिलन नहीं हो सकता अतः कवि कल्पना के लोक में मिलन की इच्छा करता है।

निशा बह गई=रात्रि व्यतीत हो गई।

दृग तारे ये कभी न हारे=परमात्मा के वियोग में जीवात्मा के आँसू निरन्तर प्रवाहित होते रहते हैं।

दुःख की इस जागृति में=इस दुःखी जीवन में जब जीवात्मा परमात्मा की वियोग वेदना का अनुभव करती है। ये आत्मा के जागरण के क्षण हैं।

तुम्हें जगाकर=अपने जीवन के दुःख के प्रति तुम्हें सचेत करके।

रामनरेश त्रिपाठी

सत्कर्त्तव्य='पथिक' खण्ड-काव्य से अवतरित है। एक साधु इस काव्य के नायक पथिक को उसकी संसार से भागने की प्रवृति हेतु धिक्कारता है, तथा मातृ-भूमि की सेवा और संसार में रहकर जनता की सेवा कर के सत्कर्त्तव्य का उसे ज्ञान कराता है।

सिन्धु विहंग······रक्षण में=जैसे पक्षी अपने पंखां के नीचे अंडे सेता और उनकी रक्षा करता है, यह पृथ्वी भी समुद्र से उसी प्रकार रक्षित है।

उदरदरी=पेट रूपी गुफा।

स्वात्मबलविज्ञ=अपने आत्मवल का ज्ञान रखने वाले।

अर्णवपोत=समुद्र में जहाज।

विभवों की आकर=नाना प्रकार के सुखों की खान।

विलसित=शोभित।

माखनलाल चतुर्वेदी

विधवा=निस्तेज के लिए प्रयुक्त।

पानी=तेज, स्वाभिमान के लिए प्रयुक्त।

चल रही घड़ियाँ……लहर जाये=सब में गति है और तेरी प्रगति रुक जाय, यह कैसे सम्भव है, दो शताब्दियों के बाद तेरी उमंग जागे यह ठीक नहीं।

स्वमुण्ड सुमेरु करले=अपने सिर को मुण्ड माला का सबसे बड़ा दाना बना ले। जीने की ममता त्याग दे। भूमि-सा……आज धानी=जैसे लहलहाते हुए धानों की हरियाली में धरती का जीवन झलकता है, उसी प्रकार अपनी निस्तेज उदास जवानी को जीवन दो। एक हिमगीरि……पृथ्वी गोल कर दे=एक सिर के बदले में हिमालय चूर-चूर कर दे जैसे मन में इरादे उठते हैं, वैसे ही पृथ्वी को हाथों में उठाकर मसल दे। वह कली……सिर तान आया=जिस प्रकार कली से फूल और फूल से सुन्दर फल बनता है, उसी प्रकार मन में उठने वाली तेरी इच्छाएँ दृढ़ होकर तथा शुभ संकल्पों का रूप धारण करके निकलें। डालियों ने……वृक्ष डाली =धरती की ओर झुके वृक्षों के लटकते फल जैसे किसी शुभ संकल्प के लिए सिर कटाने का संकेत दे रहे हों।

ग्राम-सिंह=कुत्ता। ये न मग है……रेखियाँ हैं=वीर युवक ही प्राणों की चिन्ता किये बिना नये पथ का निर्माण किया करते हैं। बलि दिशा……देखा देखियां हैं=वे दूसरे की देखा-देखी बलिदान-पथ की ओर अग्रसर हुआ करते हैं। धरा तीर्थों……मेख हैं ये=युवकों के मार्ग धरा तीर्थों की तरह वन्दनीय स्थान बन गये हैं। री मरण के……चढ़ती जवानी=जिसका मूल्य मरण है अर्थात् जो प्राणोत्सर्ग से मिलती है। भूगोल=भूमण्डल। खगोल=आकाश मण्डल। आटा दाल किसके ?=निर्जीव होकर क्या दूसरों के द्वारा सरलता से निगल जाने योग्य खाद्य पदार्थ बन गये हो? हर प्रणय……काया कल्प का है=प्रत्येक प्रलय जीवन में नया मोड़ देता है, प्रत्येक क्रान्ति में नये परिवर्तन का मोड़ होता है।

मरण का त्यौहार……जवानी=जो जीवन रहने पर जोश से भरी रहती है और मृत्यु जिसके लिए त्योहार है।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

हिन्दुस्थान हमारा है

वितान=तम्बू। प्रभंजन=आँधी। स्वाहा=यज्ञ में हवि देते समय उच्चारण करने का एक शब्द। उत्संग=गोद। औघट=दुर्गम। विधान=कार्य प्रणाली।

'दिनकर'

मनुष्य और सर्प

महाभारत-युद्ध में कौरवों की ओर से युद्धरत कर्ण की सहायता करने का प्रस्ताव अर्जुन का पूर्व शत्रु, 'अश्वसेन' नामक सर्प करता है जिसे वे ठुकरा देते हैं, क्योंकि युद्ध में भले ही सर्प उनका हित-साधन करा दे परन्तु है तो वह मानवता का सहज शत्रु ही। कर्ण का यह मानवतावादी दृष्टिकोण न केवल जन-साधारण अपितु विध्वंसक आयुधों के अम्बार पर खड़ी आज की विश्व-शक्तियों से भी बहुत कुछ कहता है।

सुहाग=सौभाग्य। **नर के भीतर की कुटिल आग**=मनुष्य के हृदय की ईर्ष्या, द्वेष, घृणा। **गत्वर**=गतिशील। **गैरेय**=गेरू के रंग जैसे। **विशिख**=बाण। **विश्रुत**=विख्यात। **शरव्य**=शर का लक्ष्य, अर्जुन। **राधेय**=कर्ण, सूत-पत्नी राधा द्वारा पाले जाने के कारण कर्ण को राधेय भी कहा जाता है। **प्रतिभट**=शत्रुपक्ष का योद्धा।

आग=ओज, तेजस्व। **संदीप्ति**=तेज, प्रकाश। **अदृष्ट**=भाग्य। **संधान**=निशाना लगाना। **पंचास्यनाद**=सिंहनाद। **शृंगी**=सींग का बना बाजा। **आमर्ष**=क्रोध।

सुभद्राकुमारी चौहान

उदधि=सागर। **दिग् दिगंत**=सभी दिशाएँ। **अनंग**=कामदेव। **कंत**=प्रिय, पति। **मारू बाजा**=युद्धक्षेत्र में बजाया जाने वाला बाजा, डंका। **विधान**=नियम, रचना, आयोजन। **चलचितवन**=तिरछी नजर से, प्रेमपूर्वक देखना। **दुरंत**=कठिन। **ज्वलंत**=जलती हुई। **हंत**=खेद तथा विषाद सूचक शब्द।

भग्न विजय माला सी=टूटी हुई माला के फूलों की भाँति, झाँसी की रानी बलि हो गयी। उपमा अलंकार है। **फूल**=इसका एक अर्थ पुष्प और दूसरा अस्थियाँ है। अतः श्लेष अलंकार है। **आहुति सी गिर चढ़ी चिता पर**=जिस प्रकार यज्ञ में पवित्र आहुतियाँ दी जाती हैं उसी प्रकार लक्ष्मीबाई ने स्वतंत्रता के यज्ञ में स्वयं की बलि दे दी। उपमा अलंकार है। **क्षुद्र जंतु ही गाते**=झींगुर, छिपकली आदि तुच्छ जीव घूमा करते हैं। उपेक्षित होने का सूचक।

सोहनलाल द्विवेदी

जय जय निर्भय हे!—कवि इस कविता में, आत्म-संयमी, वीर, प्रणवीर, बलिदानी,

दृढ़निश्चयी, दीन दुखियों के रक्षक, स्वतंत्रता की पुकार लगाने वाले, निर्भयता की प्रतिमूर्ति और राष्ट्र निर्माता गाँधीजी का जय गान करता है।

दुर्भेद्य=जिसका कठिनाई से भेद किया जा सके, अत्यन्त दृढ़। **मनस्वी**=बुद्धिमान, वहादुर। **बलिमय**=बलिदान युक्त। **राष्ट्रविधायक**=राष्ट्र को वनाने और व्यवस्था देने वाले।

उन्हें प्रणाम=निर्धन के धन, निर्वल के वल, त्यागी, स्वाभिमानी, धीर, फाँसी के फन्दों को चूमने वाले और शोषक साम्राज्यवाद की दीवारें ढहाने वाले नेताओं के चरणों में कवि का प्रणाम इन पंक्तियों में प्रस्तुत है। **प्रकाम**=यथेष्ट। **टेक**=संकल्प, आश्रय। **वितान**=विस्तार, फैलाव। **मधुकरियाँ**=पके अन्न की भिक्षा। **सरनाम**=प्रसिद्ध। **प्रतियाम**=पहर पहर पर। **हविष्य**=हवन सामग्री।

विविधा

पथ की पहचान

इस गीत का मूल भाव यह है कि सफल जीवन यापन के लिए मनुष्य को साहस के साथ जीवन-मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए। जीवन की कठिनाइयों से घबराना नहीं चाहिए और अन्य महापुरुषों के आदर्शों से प्रेरणा लेनी चाहिए।

चित्त का अवधान=मनोयोग, निश्चय। **गह्वर**=गड्ढे। सरित, गिरि, गह्वर=वाधाओं एवं कठिनाइयों के प्रतीक हैं। **बाग, बन, सुमन**=सुख के प्रतीक हैं। **कण्टकों के शर**=बाण की तरह चुभने वाले काँटे (दुःख के प्रतीक)। **कोरकों**=कली। **आन**=हठ। **निलय**=कक्ष। **स्वप्न** का प्रयोग कल्पना के लिए किया गया है। **रास्ते का एक काँटा पाँव का दिल चीर देता**=जीवन की एक कठिनाई कभी-कभी मनुष्य को हताश कर देती है। **आँख में हो स्वर्ग लेकिन पाँव पृथ्वी पर टिके हों**=मन में चाहे कितनी ऊँची कल्पना हो परन्तु कार्य व्यावहारिक होना चाहिए।

बादल को घिरते देखा है

अमल=स्वच्छ। **बिसतंतु**=कमल नाल के भीतर स्थित कोमल रेशे या तंतु। **अभिशापित**=बुरे शाप के कारण दुःखी। कवि समय के अनुसार चकवा चकवी को यह शाप है कि वे रात को साथ नही रह सकते। **क्रन्दन**=रुदन, चीत्कार। **शैवाल**=सिवार, पानी में उगने वाली घास। **प्रणय-कलह**=किलोल क्रीड़ा। **धनपति कुबेर**=उत्तर दिशा का तथा धन का स्वामी कुबेर। **अलका**=कुबेर की राजधानी का नाम।

मेघदूत=संस्कृत कवि कालिदास का प्रसिद्ध काव्य जिसमें उन्होंने मेघ को दूत बनाकर उसके द्वारा संदेश भिजवाया है। यायावर=यात्री, घुमक्कड़, जो एक स्थान पर टिक कर न रहता हो। झंझानिल=तूफानी हवा। बर्फानी=वर्फ से ढकी। अलख=न दिखाई देने वाला। उन्मादक=नशीला। परिमल=सुगन्ध। कुतंल=केश। कुवलय=नील-कमल। शतदल रक्त कमल=सौ पंखुरियों वाला लाल कमल। लोहित=लाल। त्रिपदी=तीन टाँगों वाली छोटी मेज या स्टूल। निदाग=निशान रहित, स्वच्छ। मदिरारुण=मद्यपान के कारण हुई लाल (आँखें)। उन्मद=नशे में भरे, अलसाये।

युगवाणी

इस कवि के द्वारा कवि ने मानवता के कल्याण की कामना की है और यह आग्रह किया है कि राष्ट्र के विकास का कार्य अवरूद्ध न हो।

शबनम=ओस। मेरी मिट्‌टी मिट्‌टी है=मेरा शरीर धारण करना निरर्थक है। अफीम आशा की=भुलावा देना। सर्वहारा=समाज का श्रमिक वर्ग। आसन्न=निकट। गोंस=फांस, कील। पूर्णिमा=प्रकाश और सुख का प्रतीक। अमावस=अंधकार और दुख का प्रतीक। सैलाब=जल प्लावन, प्रवाह, जल की बाढ़। गायत्री=एक वैदिक छन्द का नाम।

परिशिष्ट–२

अन्तःकथाएँ

शबरी

मतंग ऋषि की सेवा करते-करते भीलनी शबरी भगवान् की भक्त बन गयी। जब राम लक्ष्मण के साथ सीता की खोज में वन में भटक रहे थे तब वे शबरी के आश्रम में पहुँचे। शबरी ने रामचन्द्रजी का बड़ा सत्कार किया। उसने चख-चख कर मीठे बेर उन्हें खाने को दिये। राम ने सराहना करते हुए उन बेरों को बड़े उत्साह से खाया। राम ने उसे नवधा भक्ति का उपदेश दिया। अन्त में योगाग्नि में जल कर शबरी भगवान् के चरणों में लीन हो गयी।

यमलार्जुन

कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव ने नारद के साथ अशिष्टता का व्यवहार किया। असंतुष्ट होकर नारद ने उन्हें शाप दिया कि वे दोनों वृक्ष बन जायँ। दोनों ही गोकुल में अर्जुन नाम के वृक्ष बन गये। एक दिन कृष्ण घर में उधम मचा रहे थे। यशोदा ने उनको ऊखल से बाँध दिया। कृष्ण उस ऊखल को घसीट ले गये। ऊखल उन्हीं दोनों अर्जुन के वृक्षों में अटक गयी, वे दोनों वृक्ष गिर गये और दोनों कुबेर-पुत्र प्रकट हुए। श्रीकृष्ण ने उन्हें नारद के शाप से मुक्त कर यक्ष-लोक भेज दिया।

गज

एक बार एक हाथी हथिनियों के साथ एक सरोवर में जल-विहार कर रहा था। एक ग्राह ने आकर उस हाथी का पैर पकड़ लिया। हाथी ने सारी शक्ति लगा दी पर वह ग्राह से अपना पैर न छुड़ा सका। बहुत दिनों तक यह संघर्ष चलता रहा। ग्राह हाथी को गहरे जल में खींचने लगा। अपनी रक्षा का कोई उपाय न देख कर हाथी ने भगवान का स्मरण किया। हाथी की पुकार सुनते ही भगवान् अपने वाहन गरुड़ को छोड़कर उसकी रक्षा के लिए नंगे पाँव दौड़ पड़े। भगवान् ने ग्राह को मार कर गज की रक्षा की।

अहल्या

अहल्या गौतम की पत्नी थी। इन्द्र ने गौतम का वेश धारण करके अहल्या से छल किया। जब गौतम आश्रम में लौटे तब अपने तपोबल से उन्होंने सब कुछ जान लिया। उन्होंने अहल्या को पत्थर बन जाने का शाप दे दिया और यह भी कह दिया कि रामचन्द्रजी के चरणों के स्पर्श से तुम शाप से मुक्त होगी। तब से वर्षा, आतप और शीत के आघात सहती हुई अहल्या वर्षों पत्थर की शिला बनी शाप से मुक्त होने की प्रतीक्षा में बन में पड़ी रही। जब राम अपने छोटे भाई लक्ष्मण और गुरु विश्वामित्र के साथ मिथिला जा रहे थे तब मार्ग में वे उस शिला के पास से निकले। राम के चरणों का स्पर्श पाते ही अहल्या शाप से मुक्त हो गयी और सानन्द पति-लोक चली गयी।

द्रौपदी

द्रौपदी पंचाल देश के राजा द्रुपद की पुत्री थी। स्वयंवर में मत्स्य-भेद कर अर्जुन ने द्रौपदी का वरण किया। माता कुन्ती की आज्ञा से वे पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनीं। जब युधिष्ठिर जुए में दुर्योधन से हार गये तो दुर्योधन की आज्ञा से द्रौपदी राज-सभा में लायी गयी। द्रौपदी को अपमानित करने के लिए दुर्योधन ने दुःशासन को आदेश दिया कि उन्हें वस्त्र विहीन कर दिया जाय। दुःशासन ने साड़ी खींचना आरम्भ किया। सब ओर से निराश होकर द्रौपदी ने भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण किया। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी की पुकार सुनी। श्रीकृष्ण की कृपा से द्रौपदी का चीर बढ़ता गया। "दस हजार गज बल थक्यो, घट्यो न दस गज चीर।" दुःशासन थक कर बैठ गया और द्रौपदी की लज्जा की रक्षा हुई।

प्रह्लाद

प्रह्लाद दैत्य वंश के राजा हिरण्यकशिपु के पुत्र थे और भगवान् के भक्त थे। हिरण्यकशिपु भगवान् से शत्रुता मानता था और राम-नाम लेने के कारण पुत्र प्रह्लाद को अनेक यातनाएँ देता था। प्रह्लाद को मार डालने के लिए भी उसने अनेक प्रयत्न किये। अन्त में उसने आज्ञा दी कि प्रह्लाद को लोहे के लाल गरम खम्भे से बाँध दिया जाय। खम्भा फट गया और उसके भीतर से निकलकर नृसिंह भगवान् ने अपने नखों से हिरण्यकशिपु का संहार कर दिया और भक्त प्रह्लाद की रक्षा की।

जटायु

जटायु एक महा पराक्रमी गिद्ध था। सम्पाती उसका बड़ा भाई था। जटायु

राजा दशरथ का मित्र था और राम का भक्त था। जब रावण सीता का हरण करके आकाश-मार्ग से लंका जा रहा था, तब जटायु ने उसे युद्ध के लिए ललकारा। रावण के साथ उसने घोर युद्ध किया। अन्त में रावण ने उसके पंख काट दिये। वह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। जब रामचन्द्रजी सीता को खोजते-खोजते उधर से निकले तो जटायु ने उनसे सीता का सब वृत्तान्त कहा। रामचन्द्रजी ने उसे गोद में लिया और उसके सिर पर हाथ फेरा। जटायु ने शरीर त्याग दिया और भगवान ने उसको सद्‌गति दी।

सहस्रबाहु

एक बार राजा सहस्रबाहु अपनी सेना सहित परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि के आश्रम में पहुँचा। ऋषि ने राजा का बड़ा स्वागत-सत्कार किया और कामधेनु की पुत्री नंदिनी गाय की कृपा से राजा की समस्त सेना को विधिवत् भोजन कराया। जब सहस्रबाहु को इस रहस्य का पता चला तो उसने ऋषि से नन्दिनी को माँगा। मना करने पर उसने ऋषि को मार डाला। नन्दिनी राजा के हाथ न लगी। वह स्वर्ग चली गयी।

परशुराम को जब यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने राजा से युद्ध किया और अपने फरसे से उसको सेना सहित मार डाला।

अश्वसेन

अर्जुन ने जब खाण्डव वन को जलाया था तब अश्वसेन नामक सर्प की माता बेटे को निगलकर आकाश में उड़ गयी, मगर अर्जुन ने बाण से उसका मस्तक काट डाला। सर्पिणी तो मर गयी, लेकिन अश्वसेन बचकर भाग गया। उसी का बदला लेने के लिए अश्वसेन कुरुक्षेत्र की रण-भूमि में आया था।

———

परिशिष्ट—३

रस

आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा कहा है। कविता पढ़ने अथवा नाटक देखने से पाठक या दर्शक को जो आनन्द प्राप्त होता है, वह रस कहलाता है।

रस के चार अंग माने गये हैं—स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव।

स्थायी भाव

सहृदय के हृदय में जो भाव स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं, उन्हें स्थायी भाव कहते हैं। यही भाव रसत्व को प्राप्त होते हैं।

प्राचीन भारतीय आचार्यों ने स्थायी भाव नौ माने हैं। उन्हीं के आधार पर नौ रस माने जाते हैं—

स्थायी भाव	रस	स्थायी भाव	रस
(१) रति	श्रृंगार	(६) भय	भयानक
(२) हास	हास्य	(७) जुगुप्सा	वीभत्स
(३) शोक	करुण	(८) विस्मय	अद्‌भुत
(४) क्रोध	रौद्र	(९) निर्वेद	शांत
(५) उत्साह,	वीर		

बाद में 'वात्सल्य' नाम का दसवाँ रस भी स्वीकार किया गया। इसका भी स्थायी भाव रति ही है। जब रति—बालक के प्रति होती है तो वात्सल्य और जब भगवान के प्रति होती है तो 'भक्ति' रस की निष्पत्ति होती है।

विभाव

जिसके कारण सहृदय को रस प्राप्त होता है, वह विभाव कहलाता है अर्थात् स्थायी भाव का कारण, विभाव है।

विभाव दो प्रकार के होते हैं :—

(क) आलंबन विभाव (ख) उद्‌दीपन विभाव

आलंबन विभाग

वह कारण है जिस पर भाव अवलंवित रहता है—अर्थात् जिस व्यक्ति या वस्तु के प्रति मन में रति आदि स्थायी भाव उत्पन्न होते है, उसे आलंवन कहते हैं और जिस व्यक्ति के मन में स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं उसे आश्रय कहते हैं। पुत्र रोहिताश्व की मृत्यु पर विलाप करती हुई शैव्या आश्रय है और रोहिताश्व आलंवन है। यहाँ शोक स्थायी भाव है।

उद्दीपन विभाव

जो आलंवन द्वारा उत्पन्न भावों को उद्दीप्त करते है, उन्हें उद्दीपन विभाव कहते हैं, जैसे भय स्थायी भाव को उद्दीप्त करने के लिए सिंह का गर्जन, उसका खुला मुँह, जंगल की भयानकता आदि उद्दीपन विभाव हैं।

अनुभाव

स्थायी भाव के जागरित होने पर आश्रय की बाह्य चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं, जैसे, भय उत्पन्न होने पर हक्का-बक्का हो जाना, रोंगटे खड़े होना, काँपना, पसीने से तर हो जाना आदि।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि बिना किसी भावोद्रेक के केवल भौतिक परिस्थिति के कारण यदि ये चेष्टाएँ दिखलाई पड़ती हैं तो उन्हें अनुभाव नहीं कहेंगे जैसे जाड़े के कारण काँपना, गर्मी से पसीना निकलना आदि।

संचारी भाव

आश्रय के मन में उठने वाले अस्थिर मनोविकारों को संचारी भाव कहते हैं। ये मनोबिकार पानी के बुलबुलों की भांति बनते-मिटते रहते हैं जब कि स्थायी भाव अंत तक बने रहते हैं।

प्रत्येक रस का स्थायी भाव तो निश्चित है पर एक ही संचारी अनेक रसों में हो सकता है, जैसे शंका शृंगार में भी हो सकती है और भयानक में भी। स्थायी भाव भी दूसरे रस में संचारी भाव हो जाते है जैसे हास्य रस का स्थायी भाव 'हास' शृंगार रस में संचारी भाव बन जाता है। संचारी भाव को 'व्यभिचारी भाव' भी कहा जाता है।

शृंगार, हास्य और वीर रस

ऊपर दस रसों के नाम बताये जा चुके हैं उनमें से शृंगार, हास्य और वीर रस की कुछ आवश्यक बातें नीचे लिखी जा रही हैं।

श्रृंगार रस

स्थायी भाव रति है। श्रृंगार रस के दो भेद हैं—संयोग और वियोग अथवा विप्रलंभ। जिस रचना में नायक-नायिका का मिलन का वर्णन होता है, वहाँ संयोग श्रृंगार और जहाँ उनके वियोग या विरह का वर्णन होता है वहाँ विप्रलंभ श्रृंगार होता है।

उदाहरण

(५) संयोग—"लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।
देखिरूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।"

यहाँ रतिभाव की आश्रय सीता हैं। आलम्बन राम हैं। उद्दीपन लता मण्डप आदि हैं। राम का मोहक रूप तथा लोचनों का ललचाना और अपलक दृष्टि से देखना आदि अनुभाव हैं। अभिलाषा, हर्ष आदि संचारी हैं। इस प्रकार रति स्थायी भाव के जागरित होने से यहाँ श्रृंगार रस की पूर्ण निष्पत्ति हो रही है।

(२) वियोग—"हे खग-मृग हे मधुकर स्रेनी, तुम देखी सीता मृग नैनी।"

वीर रस

विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से पूर्णता को प्राप्त होने वाले 'उत्साह' नामक स्थायी भाव से वीर रस उत्पन्न होता है।

उदाहरण

मैं सत्य कहता हूँ सखे ! सुकुमार मत जानो मुझे।
यमराज से भी युद्ध में प्रस्तुत सदा मानो मुझे॥
है और की तो बात क्या गर्व मैं करता नहीं।
माता तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं॥

अभिमन्यु का यह कथन अपने सारथी के प्रति है। यहाँ पर कौरव आलम्बन, अभिमन्यु आश्रय, अभेद्य चक्रव्यूह की रचना उद्दीपन तथा अभिमन्यु के वाक्य अनुभाव हैं। गर्व, औत्सुक्य, हर्ष आदि संचारी भाव हैं। इन सभी के संयोग से वीर रस निष्पन्न हुआ है।

हास्य रस

"विभाव, अनुभाव तथा संसारी भाव के संयोग से पूर्णता को प्राप्त हास नामक मनोविकार हास्य रस उत्पन्न करता है।" विकृत रूप, साकार वेश, वाणी और

चेष्टाओं को देखकर 'हास' नामक मनोविकार के परिपुष्ट होने पर 'हास्य-रस' की उत्पत्ति होती है।

उदाहरण

हँसि-हँसि भाजैं देखि दूलह दिगम्बर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाह मैं।
कहै 'पदमाकर' सुकाहु सों कहै को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसेई तहाँ राह मैं।
मगन भयेई हँसैं नगन महेस ठाढ़े,
और हँसैं ऐऊ हँसि हँसी के उमाह मैं।
सीस पर गंगा हँसैं, भुजनि भुजंगा हँसैं,
हांस ही को दंगा भयो नंगा के विवाह मैं।

इस छन्द में महादेवजी आलम्वन हैं क्योंकि उन्हीं को देखकर हँसी आती है। उनकी विलक्षण वेशभूषा उद्दीपन है। अतिथि स्त्रियों का हंसना, भागना, खड़ा रह जाना आदि अनुभाव हैं। भय, हर्ष और चपलता, संचारी भाव हैं। इनके संयोग से हास्य रस की निष्पत्ति हुई है।

अलंकार

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले उपकरणों को अलंकार कहते हैं। इसके प्रयोग से शब्द और अर्थ में चमत्कार उत्पन्न होता है। अतः अलंकार को काव्य का आवश्यक अंग माना गया है।

अलंकारों के दो भेद किये गये हैं (१) शब्दालंकार (५) अर्थालंकार

जब केवल शब्दों में चमत्कार पाया जाता है तक शब्दालंकार और जब अर्थ में चमत्कार होता है तब अर्थालंकार कहलाता है। नीचे कुछ प्रमुख अलकारों का वर्णन किया जा रहा है—

१—शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक और श्लेष मुख्य हैं।

अनुप्रास

जहाँ व्यंजनों की आवृत्ति होती है वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है।

उदाहरण

"चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में।"

इस पंक्ति में 'च' वर्ण की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार है।

यमक

जहाँ पर एक ही शब्द की अनेक वार भिन्न अर्थों में आवृत्ति हो वहाँ पर यमक अलंकार होता है।

उदाहरण

कनक-कनक ते सौगुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात जग या पाये बौराय॥

इस उदाहरण में 'कनक' शब्द दो बार भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। प्रथम 'कनक' शब्द का अर्थ है 'धतूरा' तथा द्वितीय 'कनक' शब्द का अर्थ है 'सोना'। अतः इस उदाहरण में यमक अलंकार है।

अन्य उदाहरण

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा।
किसलय का अंचल डोल रहा॥

यहाँ प्रथम 'कुल' शब्द अर्थ समूह है। द्वितीय तृतीय कुल-कुल शब्द पक्षियों के कुल-कुल-कलरव के सूचक हैं। 'कुल' शब्द के भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण यहाँ यमक अलंकार है।

श्लेष

"जहाँ किसी शब्द के एक बार प्रयुक्त होने पर उसके एक से अधिक अर्थ हों, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।"

उदाहरण

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे, मोती मानुष चून॥

इस उदाहरण में तीसरा 'पानी' शब्द श्लिष्ट है और इसके यहाँ तीन अर्थ हैं— चमक (मोती के पक्ष में), प्रतिष्ठा (मनुष्य के पक्ष में), जल (चूने के पक्ष में)। अतः इसे दोहे में 'श्लेष' अलंकार है।

अन्य उदाहरण

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन बिस्तारन काल।
प्रकटत निर्गुन रूप ह्वै चंग रंग गोपाल॥

इस दोहे में गुन, निर्गुन तथा बिस्तारन शब्द श्लिष्ट हैं। 'गुन' का अर्थ है गुण तथा डोरी; निर्गुन का अर्थ है गुणरहित निराकार गुणातीत तथा डोरी हीन; बिस्तारन का अर्थ है—गुणों का वर्णन तथा पतंग की डोरी का विस्तार।

२—अर्थालंकार में उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

उपमा

जहाँ दो भिन्न पदार्थों अथवा व्यक्तियों में समान गुण आदि के कारण सादृश्य या साधर्म्य की स्थापना की जाती हैं, वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमा अलंकार के चार अंग होते

(क) उपमेय या प्रस्तुत

वह वस्तु अथवा व्यक्ति जिसकी किसी दूसरी वस्तु अथवा व्यक्ति से तुलना की जाती है। दूसरे शब्दों में वर्णन के विषय को 'उपमेय' कहते हैं।

(ख) उपमान या अप्रतुत

जिस वस्तु अथवा व्यक्ति से उपमेय की समता की जाती है उसे 'उपमान' कहते हैं।

(ग) साधारण धर्म

वह गुण जिसके कारण उपमेय तथा उपमान में साम्य दिखाया जाय, 'साधारण धर्म' कहलाता है।

(घ) वाचक

वह पद या शब्द जिसके द्वारा उपमेय तथा उपमान की समता प्रकट हो उसे 'वाचक' कहते हैं।

उदाहरण

'करि कर सरिस सुभग भुजदण्डा' यहाँ 'भुजदण्डा' उपमेय, 'कपिकर' (सूंड) उपमान, 'सरिस' वाचक तथा 'सुभग' साधारण धर्म हैं। इस उदाहरण में उपमा के चारों अग विद्यमान हैं। अतः यह पूर्णोपमा है। 'पीपर पात सरिस मन डोला' भी पूर्णोपमा का उदाहरण है। यदि उपमा का कोई अंग नहीं होता तो वह लुप्तोपमा कहलाती है।

रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान का भेद रहित आरोप हो वहाँ रूपक अलंकार होता है। रूपक अलंकार में उपमेय और उपमान में कोई भेद नहीं रहता।

उदाहरण

"चरण कमल बन्दौं हरि राइ।"

इस उदाहरण में 'चरण' प्रस्तुत और 'कमल' अप्रस्तुत हैं। चरण में कमल का आरोप है।

अन्य उदाहरण

उदित उदय गिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग ।
विकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन भृंग ॥

उत्प्रेक्षा

जहाँ उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जनु, जानो, मानो आदि इसके वाचक शब्द हैं।

उदाहरण

सोहत ओढ़े पीत पर, स्याम सलोने गात ।
मनो नीलमनि सैल पर, आतप पर्यौ प्रभात ॥

इस दोहे में 'पीतपट' में आतप तथा 'स्याम सलोने गात' में नीलमनि सैल की संभावना प्रकट की गयी है और 'मनो' शब्द का प्रयोग भी है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अन्य उदाहरण

१—उभय बीच सिय सोहति कैसी, ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ।
बहुरि कहउँ छबि जस मन बसई, जनु मधु मदन मध्य रति लसई ॥

२—लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाई ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥

३—चमचमात चंचल नयन बिच घूंघट-पट झीन ।
मानहु सुरसरिता बिमल जल उछरत जुग मीन ॥

छन्द

छन्द काव्य के प्रवाह को लययुक्त, संगीतात्मक, सुव्यवस्थित और नियोजित करता है। छन्द-बद्ध होकर भाव अधिक प्रभावशाली, अधिक हृदयग्राही और स्थायी हो जाता है। छन्द काव्य को स्मरण योग्य बना देता है।

छन्द के प्रत्येक चरण में वर्णों का क्रम अथवा मात्राओं की संख्या निश्चित होती है।

मात्रा

मात्रा भेद से वर्ण दो प्रकार के होते हैं—ह्रस्व एवं दीर्घ। वर्ण के उच्चारण काल में जो समय लगता है उसे 'मात्रा' कहा जाता है। अ, इ, उ, ऋ के उच्चारण में जो समय लगता है, उसकी एक मात्रा होती है। आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ

तथा इनके संयुक्त व्यंजनों के उच्चारण में जो समय लगता है, उसकी दो मात्राएं मानी गयी हैं। व्यंजन स्वतः उच्चरित नहीं हो सकते हैं। अतः मात्रा-गणना स्वरों के आधार पर होती है। ह्रस्व और दीर्घ को पिंगलशास्त्र में क्रमशः लघु और गुरु कहते हैं। लघु का चिह्न '।' है तथा गुरु का चिह्न 'ऽ' है।

यति

छन्द की एक लय होती है, उसे गति या प्रवाह भी कहते हैं। लय का ज्ञान अभ्यास पर निर्भर है। छन्दों में विराम के नियम का पालन भी किया जाता है—छन्द के प्रत्येक चरण में उच्चारण करते समय मध्य या अन्त में जो विराम होता हैं उसे 'यति' कहा जाता है।

पाद या चरण

छन्द में प्रायः चार पंक्तियाँ होती हैं, छन्द की एक पंक्ति का नाम 'पाद' है, इसी पाद को उस छन्द का चरण कहा जाता है। पहले और तीसरे चरण को विषम तथा दूसरे और चौथे चरण को सम चरण कहते हैं।

ककुभ शोभित गोरज बीच से।
निकलते व्रज वल्लभ यों लसे।
कदन ज्यों करके दिशि कालिमा।
विलसता नभ में नलिनीश है।

इस छन्द में चार पंक्तियाँ (चरण) हैं। एक-एक पंक्ति चरण या पाद है। कुछ चार चरण वाले छन्दों को दो पंक्तियों में भी लिख देने की प्रथा चल पड़ी है।

गुरु-लघु

(१) अनुस्वार युक्त (–ं) वर्ण गुरु माना जाता है। उदाहरण के लिए—"संत" और "हंस" शब्द के सं और हं वर्ण गुरु हैं। (२) विसर्ग (:) से युक्त वर्ण गुरु माना जाता है, उदाहरण के लिए अतः शब्द में 'तः' गुरु वर्ण है। (३) संयुक्ताक्षर से पूर्व का लघु वर्ण गुरु माना जाता है, जैसे 'गन्ध' शब्द में 'न्ध' संयुक्ताक्षर है अतः 'ग' लघु होते हुए भी गुरु (दो मात्रा का) है। परन्तु संयुक्ताक्षर से पूर्व वर्ण पर अधिक बल नहीं रहता, तब वह लघु ही माना जाता है। जैसे 'तुम्हारे' में 'तु' लघु है। (४) चन्द्रबिन्दु से युक्त लघु वर्ण लघु ही रहता है, जैसे—'हँसना' का 'हँ' लघु है। (५) कभी-कभी दीर्घ वर्ण भी आवश्यकतानुसार ह्रस्व पढ़ा जाता है, जैसे—'करत जो वन सुर नर मुनि भावन' में 'जो' दीर्घ होने पर भी लघु ही पढा जायगा। इसी प्रकार

'अवधेश के द्वारे सकारे गई' में 'के' दीर्घ होते हुए भी लघु ही पढ़ा जायगा। तात्पर्य यह है कि किसी ध्वनि का लघु अथवा गुरु होना उसके उच्चारण में लिये गये समय पर निर्भर है।

छन्द के प्रकार

१—वर्णिक, २—मात्रिक, ३—मुक्त

(१) वर्णिक छंद—वर्णिक वृत्तों के प्रत्येक चरण का निर्माण वर्गों की एक निश्चित संख्या एवं लघु गुरु के क्रम के अनुसार होता है। वर्णिक वृत्तों में अनुष्टुप, द्रुतविलम्बित, मालिनी, शिखरिणी आदि प्रसिद्ध हैं।

(२) मात्रिक छंद—मात्रिक छंद वे हैं जिनकी रचना में चरण की मात्राओं की गणना होती है। दोहा, सोरठा, रोला, चौपाई आदि मात्रिक छन्द हैं।

(३) मुक्त छंद—हिन्दी में स्वतंत्र रूप से आज लिखे जा रहे छन्द मुक्त छन्द हैं, जिनमें वर्ण या मात्रा का कोई बन्धन नहीं है।

मात्रिक छंदों में दोहा, सोरठा और चौपाई का विवरण निम्नलिखित है—

दोहा

इस छन्द के पहले एवं तीसरे चरणों में तेरह-तेरह एवं दूसरे तथा चौथे चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण

S । S । । । S । । ।
राम नाम मणि-दीप धरु — १३ मात्राएँ
S । S । S S ।
जीह-देहरी द्वार — ११ मात्राएँ
। । S S । । S । । ।
तुलसी भीतर बाहिरहु — १३ मात्राएँ
S S । । । । S ।
जो चाहसि उजियार। — ११ मात्राएँ

अन्य उदाहरण

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांईं परे, श्याम हरित दुति होइ।

सोरठा

सोरठा छन्द की रचना 'दोहा' छन्द के चरणों से क्रम को उलट देने पर होती है। इसके विषम चरणों में ग्यारह-ग्यारह तथा सम चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं।

उदाहरण

S I I I I I I I S I
जो सुमिरत सिधि होई, ११ मात्राएँ
I I S I I I I I I I I I
गननायक करिवर बदन। १३ मात्राएँ
I I I I S I I S I
करहू अनुग्रह सोय, ११ मात्राएँ
S I S I I I I I I I I
बुद्धि-रासि सुभ-गुन-सदन॥ १३ मात्राएँ

अन्य उदाहरण

लिखकर लोहित लेख डूब गया दिनमणि अहा।
व्योम सिन्धु सखि देख, तारक बुदबुद दे रहा॥

चौपाई

चौपाई के प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं। अन्त में दो गुरु होना अच्छा माना जाता है।

उदाहरण

S I I I I I I I I I S S
बदंउ गुरु-पद-पदुमा-परागा। १६ मात्राएँ
I I I I S I I I I I I S S
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥ १६ मात्राएँ
अमिय मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू॥



केवल मुखपृष्ठ
राजकीय मुद्रणालय, रामपुर में मुद्रित
पी०एस०यू०पी० (आर० ३०२-)१ मा०शि०प०-
१९-७-६८-७,०५,०००